ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति

डॉ. मुकेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
Email: mukeshsnk@gmail.com

शोधसार

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति कहाँ और कब हुई? - यह एक ऐसा विषय है, जो आज भी पुरातत्त्ववेत्ताओं, इतिहासकारों व विद्वद्समाज के मध्य पर्याप्त चर्चा का विषय रहा है। प्राच्य एवं प्रतीच्य दोनों ही विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टियों से इसका निराकरण करने का प्रयास किया। औपनिवेशिक सत्ता व मानसिकता से प्रभावित प्रायः प्रतीच्य विद्वानों ने ब्राह्मी की उत्पत्ति के विषय में विदेशी उद्भव के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर उसे स्वीकार किया है। किन्तु कुछ ऐसे प्रतीच्य विद्वान् भी थे जिन्होंने नीरक्षीरविवेक से ब्राह्मी की उत्पत्ति के विषय में विचार किया है। साथ ही भारतीय पुरातत्त्ववेत्ताओं एवं प्राच्य आचार्यों ने भी इस विषय का सूक्ष्म व गहन रूप में चिन्तन, मनन, मन्थन एवं अवलोकन किया तथा वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ब्राह्मी की उत्पत्ति के विषय में भारतीय या स्वदेशी उद्भव का सिद्धान्त ही सर्वथा समीचीन है। प्रस्तुत शोधलेख के माध्यम से ब्राह्मी के विषय में विदेशी एवं स्वदेशी उद्भव के सिद्धान्त का पर्याप्त आलोड़न, अन्वेषण एवं सूक्ष्म परीक्षण कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि ब्राह्मीविषयक स्वदेशी उद्भव के सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाले आचार्यों का मत ही सर्वमान्य एवं सर्वस्वीकार्य है।

शब्दकुञ्जी: *लिपि, ब्राह्मी, भाषा, मुहर, सील, शिल्प, शुल्वसूत्र, फा-वान-शू-लिन्, कइअलू, खरोष्ठी, सेमेटिक, फोइनीशियन/फोनिशियन।*

273-272 ई. पूर्व अथवा 269-268[1] ई. पूर्व में मौर्य सिंहासन को अलंकृत करनेवाले मौर्यवंश के महान् सम्राट देवानांप्रिय[2] प्रियदर्शी राजा अशोक ने अपने शासनादेशों, राजाज्ञाओं, धार्मिक व राजकीय घोषणाओं आदि को जनता से अवगत कराने के उद्देश्य से अभिलेखीय अभिव्यक्ति का आश्रय लिया, जिसे शिलाओं, स्तम्भों एवं गुफाओं आदि पर प्राकृत (पाली) भाषा एवं ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण कराकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक नवीन परिपाटी का प्रचलन आरम्भ किया। यद्यपि अशोक के कुछ अभिलेख खरोष्ठी आदि अन्य लिपियों में भी लिपिबद्ध दिखाई पड़ते हैं। अशोक के अनन्तर अभिलेखों को लिपिबद्ध किये जाने की विस्तृत एवं सुव्यवस्थित परम्परा दिखाई पड़ती है। हाँ, अन्तर यह रहा कि भाषा की दृष्टि से अब प्राकृत (पाली) का स्थान संस्कृत भाषा ने ग्रहण कर लिया, किन्तु लिपि की दृष्टि से ब्राह्मी की स्थिति बनी रही, यद्यपि देश, काल व स्थान की दृष्टि से उसमें संरचनात्मक परिवर्तन अवश्य दिखाई पड़ते हैं। सल्तनतकाल से पूर्व ब्राह्मी का रूपांतरण व विकास विविध रूपों में हो चुका था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सल्तनतकालीन साम्राज्य स्थापित होने के पूर्व ही भारतीय आचार्यों में प्राचीन ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण अभिलेखों के पठन-पाठन की परम्परा लुप्त हो चुकी थी। यही कारण है कि 1351[3] ई. में तुगलक राजसिंहासन पर आरूढ़ होनेवाले फीरोजशाह तुगलक ने जब 1356[4] ई. में पंजाब के अम्बाला जिले के टोपरा नामक स्थान एवं मेरठ से प्राप्त अशोककालीन स्तम्भलेखों को अत्यन्त परिश्रमपूर्वक तत्तद् स्थानों से मंगवाकर क्रमशः दिल्ली के फीरोजशाह कोटला एवं रिज नामक पहाड़ी पर स्थापित कर बहुविध विद्वानों की सहायता से उक्त स्तम्भों पर उत्कीर्ण लेखों को पढ़वाने अथवा रहस्य को जानने की कोशिश की तब किसी भी विद्वान् के द्वारा उस लेख को पढ़ने में असमर्थ जानकर लेखों के अभिप्राय को जानने की उनकी जिज्ञासा धरी की धरी रह गई।

---

1 अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, पृ. 17.
2 भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, अशोक का अभिलेख, पृ. 90.
3 भारत का इतिहास (1000-1707), पृ. 158.
4 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 89.

©Indira Gandhi National Open University

कालान्तर में महान् मुगल बादशाह अकबर ने भी उन लेखों के आशय को जानने की जिज्ञासा प्रकट की किन्तु कोई भी विद्वान् उनकी जिज्ञासा का शमन करने में समर्थ नहीं हुए।

अंग्रेजों के आगमन के साथ ही औपनिवेशिक सत्ता के हितों को साधने एवं भारतीय ज्ञानपरम्परा एवं संस्कृति पर आघात करने के उद्देश्य से ही सही, अंग्रेजों में भारतीय ज्ञान के रहस्य को जानने, अन्वेषित करने तथा औपनिवेशिक हितों के अनुकूल भारतीय इतिहास को प्रस्तुत करने की नई परम्परा का आरंभ होता है। अन्वेषण-क्रम में ही ब्रिटिश विद्वानों को कुछ अभिलेख हाथ लगे, यथा - 1750 ई. में पैड्रे टीफैनथैलर को दिल्ली-मेरठ स्तम्भलेख, 1785 ई. में बाराबर और नागार्जुनी पर्वतीय गुफालेख, 1822 ई. में टॉड को गिरनार शिलालेख, 1837 ई. में किट्टो को धौली शिलालेख, 1840 ई. में कैप्टन बर्ट को भाबरु शिलालेख, 1850 ई. में सर वाल्टर इलियट को जौगड़ शिलालेख, 1872 में कारलायल को रामपुरवा स्तम्भलेख, 1882 ई. में भगवान् लाल इन्द्राजी को सोपारास्थित आठवें शिलालेख का एक खण्ड, 1891 ई. में राइस को मैसूरस्थित शिलालेख, 1895 ई. में फीहरर को निगालीसागर स्तम्भलेख एवं 1896 ई. में रुम्मिन्देई स्तम्भलेख, 1905 ई. में ओरटैल को सारनाथ स्तम्भलेख, 1915 ई. में बीडन का मास्की चट्टानी लेखादि।[5]

1772-74 ई. तक बंगाल का गवर्नर एवं 1774-85 ई. तक ब्रिटिश भारत के प्रथम गवर्नर जनरल रहे वॉरेन हेस्टिंग्ज[6] की प्रेरणा से 15 जनवरी 1784 को सर विलियम जोन्स[7] ने एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थाना कलकत्ता में की। मुख्य रूप से इस सोसायटी का उद्देश्य एशिया खण्ड के इतिहास, पुरालेख, प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, दानपत्र, सिक्के, इतिहास, भूगोल, भिन्न-भिन्न शास्त्र, रीति-रिवाज, शिल्प, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति से संबंधित विषयों का अध्ययन करना, अन्वेषण करना, गवेषणा करना तथा शोधपरक प्रतिपादन करना रहा। साथ ही शिलाओं, स्तम्भों, गुफाओं, दानपत्र आदि में उत्कीर्ण अभिलेखों को छापना, उसको पढ़ना, उसका अनुवाद करना, उसे प्रकाशित करना आदि कार्य भी रहे। कहने का आशय यह है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्राचीन अभिलेखों को संग्रहित कर प्रयत्नपूर्वक पढ़ने की एक नवीन परम्परा का आरम्भ हुआ। 1781 में चार्ल्स विल्किन्स ने मुंगेर में प्राप्त बंगाल के राजा देवपाल का दानपत्र पढ़ा। 1785 ई. में चार्ल्स विल्किन्स ने बंगाल के राजा नारायणपालकालीन स्तम्भलेख, जो दीनाजपुर जिले के बादल नामक स्थान से प्राप्त हुआ था, उसे पढ़ा। 1785 ई. में पंडित राधाकांत शर्मा ने टोपरावाले दिल्लीस्थित अशोक के स्तम्भलेख पर उत्कीर्ण चौहान राजा आन्नल्लदेव (आना) के पुत्र वीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के तीन लेखों का पाठन किया। 1785-89 के बीच चार्ल्स विल्किन्स ने जे.एच. हेरिंगटन के द्वारा बोधगया के नागार्जुनी एवं बराबर की गुफाओं से प्राप्त मौखरी वंश के राजा अनन्तवर्मन के तीन लेखों को पढ़ा। 1818 से 1823 ई. तक राजपूताना एवं काठियावाड़ में कई प्राचीन लेखों की खोज करनेवाले जेम्स टॉड के गुरु यति ज्ञानचन्द्र ने 7वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक के उक्त लेखों को पढ़ा। 1834 ई. में कैप्टन ट्रॉयर ने अशोककालीन प्रयाग स्तम्भ पर उत्कीर्ण गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के लेखों को आंशिक रूप में तथा डॉ. मिल ने उसे पूर्ण रूप में पढ़ा। मिल ने ही 1837 ई. में स्कन्दगुप्त का भिटारी स्तम्भलेख को पढ़ा। 1837-38 ई. में जेम्स प्रिन्सेप ने देहली, कहाऊँ और एरण के स्तम्भों तथा काँची और अमरावती के स्तूपों और गिरनार चट्टान पर उत्कीर्ण गुप्तलिपि को पढ़ा।[8] 1837 में प्रिंसेप ने देहली-टोपरा लेख को, 1831 ई. में उसने ही धौली और गिरनार लेखों को, 1840 में नौरिस ने शहबाजगढ़ी शिलालेख को पण्डित कमलाकान्त की सहायता से, किट्टो ने 1840 ई. में ही भाबरु शिलालेख को पढ़ा।[9] इस तरह शिलालेखों को पढ़ने की अनवरत प्रक्रिया आरंभ हो गयी। शिलालेखों को पढ़ने की प्रक्रिया के साथ ही पूर्व में उपलब्ध लेखों को ग्रीक एवं सिकन्दनकालीन माने जाने का भ्रम उक्त लेखों के वाचन के साथ ही समाप्त हो गया। साथ ही पूर्ववर्ती अभिलेखों की भाषा संस्कृत स्वीकार किये जाने का अनुमान भी अशोककालीन लेखों को पाये जाने एवं पढ़े जाने के साथ ही धूमिल हो

---

5 प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 292.

6 आधुनिक भारतीय इतिहास, पृ. 102.

7 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 89.

8 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 90-91.

9 प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 293.

©Indira Gandhi National Open University

गया और यह स्थापित हो गया कि प्राचीन अभिलेखों की लिपि निश्चित रूप से ब्राह्मी थी, किन्तु अशोककालीन अधिकांश लिपियों पर उत्कीर्ण भाषा तत्तद् स्थानों की प्रचलित देशी भाषा प्राकृत थी। प्रिन्सेप आदि विद्वानों के द्वारा ब्राह्मी लिपि को पढ़ लिये जाने के साथ ही पूर्ववर्ती अन्य लेखों को पढ़ना सुगम हो गया क्योंकि समस्त भारतीय लिपियों का मूलाधार ब्राह्मी लिपि ही थी। चार्ल्स विल्किन्स, पंडित राधाकान्त शर्मा, कर्नल जेम्स टॉड एवं उनके गुरु यति ज्ञान चन्द्र, डॉक्टर वी.जी. बॅविंगटन, वॉल्टर इलिअट, डॉ. मिल, डब्ल्यू.एच. वॉथन्, जेम्स प्रिन्सेप, मि. नौरिस, जनरल कनिंघम आदि अनेक विद्वानों ने ब्राह्मी और उससे उद्भावित लिपियों और उनकी वर्णमालाओं को पढ़ने का कार्य किया। 1877-79 में जनरल कनिंघम ने 'कार्पस् इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिरेकम्' नामक अभिलेखाधारित प्रथम पुस्तक प्रकाशित की। 1925 ई. में कार्पस् का नया संस्करण हल्टष् (Hultzsch) के द्वारा प्रकाशित कराया गया। पूर्व में 1801 ई. में उस समय तक प्राप्त शिलालेखों की नकलें 'एशियाटिक रिसर्चिज' में भी प्रकाशित हुई थी।[10] इस प्रकार लिपि के उद्वाचन के साथ ही प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के अवबोधनार्थ अकाट्य सामग्री अर्थात् पुरातात्त्विक स्रोत के द्वारा उसकी सुस्थापना का मार्ग सुगम एवं सुलभ हो गया।

अब प्रश्न यह है कि यह लिपि क्या है? तथा लिपि एवं भाषा में क्या अन्तर है? लिपि कितने प्रकार के हैं? आदि। कोशग्रन्थों के अनुसार √लिप् धातु से इक् प्रत्यय या √लिप् धातु से इक् अथवा ङीप् लगकर लिपि या लिपी शब्द निष्पन्न होता है, जिसका सामान्य अर्थ है[11] - लीपना, पोतना, लिखना, लिखावट, अक्षरविन्यास, अक्षरसंस्थान, लिपी, लिबी, लिबि, अक्षररचना, लिखने की कला, लिखित अक्षर, वर्ण, वर्णमाला आदि। अमरकोशकार कहते हैं -

लिखिताक्षरविन्यासे लिपिर्लिबिरुभे स्त्रियौ।
स्यात्सन्देशहरो दूतो दूत्यं तद्भावकर्मणि।।

आंग्ल-पर्याय के रूप में लिपि के लिए writing in general, handwriting, a writing, a written paper, written characters, letters, alphabet, painting, drawing, smearing, alphabet, anointing, the art of writing etc. शब्दों का प्रयोग कोशकारों ने किया है।[12] लिखित वर्ण को लिपि कहा जाता है - **लिखितवर्णम् लिपिः।** वर्णों तथा चिह्नों के संयोजन की प्रणाली लिपि है। कोशकार जटाधर ने अक्षररचना को लिपि कहा है। शब्दरत्नावली में लिपिका शब्द प्रयुक्त हुआ है।

वस्तुतः लिपि किसी भाषा के ऐसे लघुतम अक्षरों का समूह है जो लिखने के लिए प्रयुक्त होता है। यह भाषा को लिखने की व्यवस्था है। भाषा को तल पर व्यवस्थित करने की विधि है, भाषा को दृश्यमान स्थायित्व प्रदान करनेवाले यादृच्छिक, परम्परागत वर्णप्रतीकों की व्यवस्था है। यह भाषा को मूर्त रूप प्रदान करती है तथा उसे स्थायित्व प्रदान करती है। जहाँ भाषा ध्वनियों की व्यवस्था है वहीं लिपि वर्णों की व्यवस्था है। भाव को व्यक्त करेनवाले चिह्न, संकेत, चित्रादि लिपि के आरंभिक रूप रहे होंगे। ऐसे भावपूर्ण चिह्न या संकेत, जिनसे मौखिक भाषा या वाचिक भाषा स्थिर एवं सुरक्षित होकर समय तथा स्थान की सीमाओं को पारकर चिरस्थायी बन जाती है। इस दृष्टि से भाषा की उत्पत्ति लिपि से पहले हुई। भाषा के लिए लिपि आवश्यक नहीं है, किन्तु लिपि के लिए भाषा आवश्यक है। भाषा सूक्ष्म है तो लिपि स्थूल है। भाषा की ध्वनियों में अस्थायित्व है तो लिपि में अपेक्षाकृत अधिक स्थायित्व है। भाषा श्रव्य है और उसका सम्बन्ध श्रवणेन्द्रिय से है, वहीं लिपि दृश्य एवं पाठ्य होने से नेत्रें से सम्बन्धित है। भाषा का रूप मौखिक है तो लिपि दृश्यमान है। लिपि में भौतिक साधनों - शिला, स्तम्भ, मुद्रा, ताम्रपत्र, भूर्जपत्र, कागज, कलम, कम्प्यूटर आदि का प्रयोग आवश्यक है। मौखिक रूप होने के कारण भाषा में स्थान, व्यक्ति एवं कालभेद से परिवर्तन सम्भव है जबकि लिखित एवं लिपिबद्ध रूप में होने से यहाँ परिवर्तन की सम्भावना अपेक्षाकृत कम होती है। भाषा ध्वनियों का समूह है जबकि लिपि में ध्वनियों के प्रतीकस्वरूप रेखाओं एवं चिह्नों का समावेश दिखायी

---

10 *वही*, पृ. 294.

11 वाचस्पत्यम्, भाग-6, पृ. 4828; शब्दकल्पद्रुम, भाग-4, पृ. 223; संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 878.

12 संस्कृत-आंग्लकोश, पृ. 481.

©Indira Gandhi National Open University

पड़ता है। भाषा सद्यःप्रभावकारी है जबकि लिपि का प्रभाव विलम्ब से प्रतीत होता है। भाषा का सम्बन्ध जीवन से है जबकि लिपि का सम्बन्ध सभ्यता एवं संस्कृति के विकास से है। फिर भी दोनों का मूल आधार ध्वनियाँ हैं, दोनों ही भाव और विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है यद्यपि दोनों से होनेवाली भावाभिव्यक्ति अपूर्ण दिखाई पड़ती है। दोनों की लभ्यता ज्ञानशिक्षण से सम्भव है। दोनों ही सांस्कृतिक उन्नति का प्रतीक एवं मानव विकास के लिए अपेक्षित है। भाषा एवं लिपि अभिन्न रूप से सह-सम्बद्ध हैं तथा प्रत्येक को अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए दूसरे की अपेक्षा होती है। भाषा की उत्पत्ति के समान लिपि की उत्पत्ति के इतिहास को बताना कठिन है क्योंकि आरंभ में जिन वस्तुओं पर ये लिपियाँ अंकित थीं वे काल-कवलित हो गयीं। इस प्रकार भाषा यदि अभिव्यक्ति का माध्यम है तो लिपि लिखित रूपाभिव्यक्ति का। भाषा के अस्तित्व के लिए उस भाषा की लिपि का अस्तित्व भी आवश्यक है। कहा भी गया है - **कण्ठं स्थिते वर्णघोषं लिखितरूपं लिपिकास्तथा।** लिपि ने भाषा के अस्तित्व को संरक्षित करने के साथ-साथ भाषा के भाव को भी सुरक्षित रखा है। भाषा की विविधता के साथ लिपि की विविधता जुड़ी रहती है। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में लिपि के वैविध्य की ओर संकेत करते हुए कहा गया है -

नानादेश समाचारा नानाभाषसमोदया।
नानाकर्मार्थसंयोगा नानालिङ्गैस्तु लक्षयेत्।
मध्यदेशाबहिर्येषां वाचा भवति चञ्चला।।
ते हि व्यक्तं नरा ज्ञेया म्लेच्छाभाषारता हि ते।[13]

लिपि मानव व्यवहार के साथ सम्पृक्त रही है तथा मानव व्यवहार का प्रतीक है। भाषा का प्रत्यक्षीकरण लिपि से ही सम्भव है - **लिपिनोऽक्षरदृश्यरूपाम्।**[14] भाषा की अन्तर्सम्बद्धता व्याकरण के साथ है तो लिपि लेखनी की उपज है।

ऋग्वेद के एक मंत्र से भावित होता है कि ब्रह्मा द्वारा रचित भारत की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी, ब्रह्मी थी -

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कविक्रदत्।।
अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीऋतस्य मातरः। मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम्।।[15]

त्रित आप्त्य ऋषि द्वारा गायत्री छंद में ग्रथित पवमान सोम देवता के इन मंत्रों में उल्लिखित ब्रह्मी वाच् अथवा ब्रह्मी-वाक् शब्द विचारणीय है। यद्यपि पाणिनि की दृष्टि में ब्रह्मी शब्द सही नहीं है, बल्कि इसके स्थान पर ब्राह्मी शब्द का प्रयोग उचित था। इस दृष्टि से ब्रह्मी का रूपान्तरण ब्राह्मी के रूप में हुआ होगा। भाषा के लिखित स्वरूप का दर्शन हमें ऋग्वैदिक मंत्रों में भी प्राप्त होता है। कुछ मन्त्र इस प्रकार हैं -

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।[16]

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्।।[17]

---

[13] मञ्जुश्रीमूलकल्प, सम्पादक - टी- गणपति शास्त्री, त्रिवेंद्रम, 1920 ई., पृ. 234.

[14] ललितविस्तर, सम्पादक - शान्तिभिक्षु शास्त्री, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1984 ई. लिपिशाला संदर्शनपरिवर्त 10, 301.

[15] ऋग्वेद, 9-33-4-5.

[16] ऋग्वेद, 10-71-4.

[17] ऋग्वेद, 10-71-5.

©Indira Gandhi National Open University

चिह्नों के आधार पर पशुओं को पहचानने के संकेत ऋग्वैदिक काल से ही प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, हड़प्पा संस्कृति के उत्खननस्थल से प्राप्त मुहरें, सीलें, नामपट्ट आदि इस रहस्य को उद्घाटित करते हैं कि भले ही सिन्धु सभ्यता की लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी हो, किन्तु चित्रलिपि का संकेत तो अवश्य ही प्रकट करते हैं। साथ ही जब पाणिनि अपने अष्टाध्यायी में **'यवनाल्लिप्याम्'**[18] सूत्र के द्वारा नामतः यवन लिपि का उल्लेख करते हैं तो अवश्य ही यह उल्लेख इस बात को व्यक्त करता है कि भारत में स्थानीय स्तर पर अन्य लिपियाँ प्रचलित थीं। सिन्धु सभ्यता से पूर्व भी कन्दराओं और गुफाओं से प्राप्त प्रतीकचिह्नों एवं संकेतचिह्नों से यह द्योतित होता है कि किसी न किसी रूप में भारतीय लेखनकला से परिचित थे तथा सिन्धु सभ्यता से लेकर पाणिनिकाल तक अनवरत रूप से उसका प्रयोग होता रहा था।

प्राचीन सूत्र व स्मृतिसाहित्य में लेखनकला की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है, यथा - विष्णुधर्मसूत्र का कथन है -

वर्णैश्च तत्कृतैश्चिह्नैः पत्रेरेव च युक्तिभिः।
सन्दिग्ध साधयेल्लेख्यं तद्युक्तिप्रतिरूपकैः।।
यत्रर्णी धनिको वापि साक्षी वा लेखकोऽपि वा।
म्रियते तत्र तल्लेख्यं तत्स्वहस्तैः प्रसाधयेत्।।[19]

बृहस्पति का एक प्राचीन श्लोक आह्निकत्व में उद्धृत है, जिसमें कहा गया है -

षाण्मासिके तु समये भ्रान्तिः सञ्जायते यतः।
धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्ररूढाण्यतः पुरा।।[20]

अर्थात् छह महीने में किसी घटना-प्रसंग के विषय में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाने के कारण ब्रह्मा ने अत्यन्त प्राचीनकाल में पत्र पर आरूढ़ हो सकने योग्य अक्षरों की रचना की।

कात्यायन ने भागपत्र, दानपत्र, क्रियापत्र, आधान या आधिपत्र, शिति या संवित् पत्र, दायपत्र, सीमापत्र, ऋणलेख, विशुद्धिपत्र, सन्धिपत्र, उपगत या अभिधापत्र के नाम से अभिलेखों का न्यायिक दृष्टि से उल्लेख किया गया है। अपरार्क ने लेख्य पर अंकित राजचिह्न की प्रामाणिकता को ऋणि, साक्षी और लेखक की मृत्यु के उपरान्त भी स्वीकार किया है -

समुद्रेऽपि यदा लेख्ये मृताः सर्वेऽपि ते स्थिताः।
लिखितं तत्प्रमाणं तु मृतेष्वपि हि तेषु च।।

नारद भी कहते हैं कि किसी तथ्य को सिद्ध करने के लिए हस्तचिह्नों एवं लिपिचिह्नों को आधार बनाया जाता था, जो लिपि से ही सम्भव है -

यत्र स्यात् संशयो लेख्ये भूताभूतकृते क्वचित्।
तत्स्वहस्तक्रियाचिह्न युक्तिप्राप्तिभिरुद्धरेत्।।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के लेख्यलक्षणवर्णन नामक अध्याय में राजसाक्षी में लिखित, गवाही की मौजूदगी में लिखित एवं अपने हाथ से लिखित तीन प्रकार के लेखों का वर्णन है -

---

18 अष्टाध्यायी, 4-1-49 पर वार्त्तिक-3.

19 विष्णुस्मृति, सम्पादक - एफ- मैक्समूलर, अनुवादक - जूलियस जॉली, पुनर्मुद्रण - भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1991 ई., 7-12-13.

20 आह्निकतत्त्व, कोलकाता, अक्षररचनाप्रसंग।

©Indira Gandhi National Open University

लिखितं तत्प्रमाणं तु मृतेष्वपि हि साक्षिषु।

लिखित प्रमाण के वैशिष्ट्य की चर्चा नारदस्मृति में भी प्राप्त होती है - **'साक्षिभ्यो लिखितं श्रेयं लिखितान्न तु साक्षिणः'**। वहाँ इस बात का भी निर्देश है -

छिन्न भिन्न हृतोन्मृष्टनष्टदुर्लिखितेषु च।
कर्त्तव्यमन्यल्लेख्यं स्यादेष लेख्यविधि स्मृतः।।[21]

शब्दकल्पद्रुम में वाराहीतन्त्र में उल्लिखित लिपि के पाँच प्रकारों की चर्चा है -

मुद्रालिपिः शिल्पलिपिर्लिपिर्लेखनिसम्भवाः।
गुण्डिकाघुणसम्भूता लिपयः पञ्चधा स्मृताः।।[22]

अर्थात् मुद्रलिपि, शिल्पलिपि, लेखनी की लिपि, गुण्डिका अर्थात् आटा या चूर्णलिपि और घुण से बनी हुई लिपि। इसी तरह वैदिक गणित, ज्योतिष, मुहूर्तादि की गणना, शुल्वसूत्र, वेद में उल्लिखित जुए के पासे पर अंकित चिह्न, पशुकर्णादि पर अंकित चिह्न, शुल्वसूत्र, वेदांगज्योतिष, छन्दशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, संख्या-गणन, यज्ञवेदिका का निर्माण-काल आदि में उल्लिखित चिह्न लेखन की प्राचीनता को ही प्रकट करता है। लिपि की चर्चा तन्त्र में भी प्राप्त होती है। भारतीय समाज में लिपि पठन-लेखन अक्षरारम्भसंस्कार नाम से प्रचलित रहा है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में चूडाकर्म के अनन्तर लेखन (वर्णमाला) और गणना (अंकमाला) सीखने के कार्य को आरंभ करने का निर्देश दिया गया है -

वृत्तचौलकर्मा लिपि संख्यानं चोपयुञ्जीत्।[23]

आठवीं-नवीं सदी में यह संस्कार **'शिशोर्लिपिग्रहो'** कर्म के रूप में प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ **'नूतनाक्षरलेखनप्रारम्भः कार्यः'** प्राप्त होता है।

लिपि के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए पाँचवीं शताब्दी के स्मृतिग्रंथ नारदस्मृति में कहा गया है कि यदि ब्रह्मा ने नेत्रतुल्य लेखनकला का आविष्कार नहीं किया होता तो विश्व अभी तक आज जैसी सुस्थिति में नहीं पहुँच पाती अर्थात् इस लोक की आज जैसी शुभ गति नहीं होती -

नाकारिष्यद्यदि ब्रह्मा लिखितं चक्षुरुत्तमम्।
तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यच्छुभा गतिः।।[24]

अन्यत्र भी कहा गया है -

षाण्मासिके तु समये भ्रान्तिः संजायते यतः।
धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढाण्यतः पुरा।।

चूँकि छह महीने के अनन्तर किसी घटना के विषय में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है, इसलिए ब्रह्मा ने अतिप्राचीन काल में पत्रारूढ़ अक्षरों की सृष्टि की।

---

21 नारदस्मृति, 4-1-146.
22 शब्दकल्पद्रुम, भाग-4, पृ. 223.
23 अर्थशास्त्र, 1-5-2.
24 नारदस्मृति, 4-1-70.

©Indira Gandhi National Open University

रघुवंश महाकाव्य में भी उल्लेख है कि लिपि के यथावद् ग्रहण से मनुष्य उसी प्रकार वाङ्मय के विशाल कोश में प्रवेश करता है जिस प्रकार नदीमुख से समुद्र में घड़ियालादि प्रवेश करते हैं -

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाग्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्।[25]

उपर्युक्त विवेचन लिपि के उद्भव की प्राचीनता को भी व्यक्त करता है। विश्व के भिन्न-भिन्न देशों में जिस प्रकार अपनी-अपनी भाषा को किसी देवताविशेष से जोड़कर लिपि की उत्पत्ति के विषय में देवोत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है, यथा - मिस्री लोगों ने अपनी लिपि हायरोग्लिफिस की उत्पत्ति थाथ नामक देवता से, बेबिलोनियावासियों ने अपनी कीलाक्षर लिपि की उत्पत्ति नेबू से, चीनियों ने चीनी लिपि की उत्पत्ति वेनचांग से, यूनानियों ने ग्रीस लिपि की उत्पत्ति हर्मेस से, इजरायलियों ने हिब्रू लिपि की उत्पत्ति जेहोवा से, रोमनवासियों ने अपनी रोमन लिपि की उत्पत्ति मर्करी से तथा अरबवासियों ने अपनी अरबी लिपि की उत्पत्ति अल्लाह या आदम से बतायी है ठीक उसी तरह भारतवासियों ने ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है।[26] आचार्यों ने लिपि-विकास के मुख्य तीन चरणों के साथ-साथ गौण रूप से माने जानेवाले तीन अन्य चरणों का भी निरूपण किया है, जिसका उल्लेख इस प्रकार है - प्रमुख तीन चरण हैं -

1. चित्रलिपि - फ्रांस, स्पेन, यूनान, इटली, मिस्रादि से प्राप्त।
2. भावलिपि - उत्तरी अमेरिका, चीन, अफ्रीकादि। और
3. ध्वनिलिपि - भारत, रोम, अरबादि।

उपर्युक्त तीन चरणों में से ध्वनिलिपि के भी दो भेद किये जाते हैं – 1. अक्षरात्मक एवं 2. वर्णात्मक।

इसी तरह गौण कहे जानेवाले तीन चरण हैं -

1. सूत्रलिपि - पेरू से प्राप्त 'क्वीपू'।
2. प्रतीकात्मक लिपि - आदिम जातियों में प्राप्त।
3. भाव-ध्वनिमूलक लिपि - मिस्री, हित्ती, मेसोपोटामिया से प्राप्त। कुछ विद्वानों ने सिन्धु-घाटी लिपि को भी इसके अन्तर्गत रखा है।

साथ ही आचार्यों ने वर्णमाला के आधार पर भी विश्व की प्राचीन लिपियों का वर्गीकरण किया है -

1. वर्णमालारहित लिपियाँ:-
   - (i) क्यूनीफॉर्म (कीलाक्षर)
   - (ii) हीरोग्लाइफिक (गूढ़ाक्षर)
   - (iii) क्रीटी लिपि
   - (iv) सिन्धु घाटी लिपि
   - (v) चीनी लिपि
2. वर्णमालायुक्त लिपियाँ:-

---

[25] रघुवंश, 3/28.

[26] भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, पृ. 482.

©Indira Gandhi National Open University

(i) सामी, आर्मेइक, फोनीशियान, हिब्रू लिपियाँ

(ii) अरबी

(iii) ग्रीक (यूनानी)

(iv) लैटिन (रोमन)

(v) खरोष्ठी

(vi) ब्राह्मी

जहाँ तक लिपियों की संख्या की बात है तो आरंभ में दो लिपियाँ प्रचलित थीं, जिनमें से एक नागरी अर्थात् बाएँ से दाएँ अर्थात् सार्वदैशिक तथा दूसरी दाएँ से बाएँ अर्थात् एकदैशिक। उक्त दोनों लिपियों का प्राचीनतम नाम अज्ञात रहा है। जैनग्रंथ पन्नवणासूत्र तथा समवायांगसूत्र में 18 लिपियों का नाम मिलता है। बौद्धग्रंथ ललितविस्तर में 64-65 लिपियों का उल्लेख मिलता है। समवायांगसूत्र में अट्ठारह लिपियों में पहला नाम बंभी (ब्राह्मी) का है। भगवतीसूत्र में बंभी (ब्राह्मी) लिपि को नमस्कार करके सूत्र को प्रारंभ किया गया है, यथा - **'नमो बंभीए लिवए'।** ललितविस्तर में भी पहला नाम ब्राह्मी का ही मिलता है। 668 ई. में रचित बौद्ध विश्वकोष 'फा युअन् चु लिन्' में ललितविस्तर में उल्लिखित 64 लिपियों की चर्चा है जिनमें पहली लिपि ब्राह्मी ही है। इस चीनी विश्वकोष फा-वान-शू-लिन/फा युअन् चु लिन् में भिन्न-भिन्न लिपियों का वर्णन है, जिनमें तीन लिपियों का निरूपण प्रमुख है, वे हैं - (1) ब्राह्मी (2) कइअलू (किअ-लु) तथा (3) तनसकी या त्सं। इनमें से दैवी शक्तिवाले आचार्यों में से एक ब्रह्मा ने ब्राह्मी बनायी जिसे बाईं से दाहिनी ओर पढ़ी जाती है। किअ-लु खरोष्ठ का संक्षिप्त रूप है। इसकी लिपि दाहिनी से बायीं ओर पढ़ी जाती है। चीनी भाषा में खरोष्ठ का अर्थ गधे का होठ होता है।[27] त्सं चीनी लिपि है जिसे ऊपर से नीचे की ओर पढ़ी जाती है।[28] ब्रह्मा और खरोष्ठ भारतवर्ष में हुए जिन्होंने अपनी लिपियाँ देवलोक से प्राप्त किया। त्सं-की चीन में हुए। त्सं-की ने अपनी लिपि पक्षी आदि के पैरों के चिह्न पर बनाई।[29] ब्राह्मी इस देश की स्वतंत्र एवं सार्वदेशिक लिपि थी। जैनों एवं बौद्धों ने भी अपने ग्रंथों का प्रणयन इसी लिपि में किया। फलतः जैन-बौद्ध ग्रंथों एवं उक्त विश्वकोष में उल्लिखित लिपियों की नामावली में इसको प्रथम स्थान दिया गया है। मध्यकालीन फारसी इतिहासकार (973-1048 ई-) अबु रेहान मुहम्मद बिन अहमद अलबेरुनी द्वारा अरबी भाषा में रचित किताब - **उल-हिन्द** में उद्धृत है कि ब्राह्मी लिपि ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत लिपि थी, जिसे बाएँ से दाएँ लिखी जाती थी। जैन ग्रंथ आदिपुराण में इस बात की चर्चा है कि चौबीस (24) तीर्थंकरों में से प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी पुत्री को शिक्षित करने के उद्देश्य से जिस लिपि का आविष्कार किया था कालान्तर में उस लिपि का नाम उनकी पुत्री के नाम पर ब्राह्मी पड़ा।

स्पष्ट है कि भारतीय लेखनकला की चर्चा होते ही सर्वप्रथम ब्राह्मी लिपि प्रकाश में आती है। अतः यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि ब्राह्मी लिपि के उद्भव का इतिहास क्या रहा है? अधिकांश प्राच्य और प्रतीच्य परम्परा स्वीकार करती रही है कि ब्राह्मी लिपि का उद्गमस्थल भारत रहा है। परन्तु कुछ ऐसे भी विदेशी आचार्य हैं जो ब्राह्मी की उत्पत्ति विदेशी स्रोत से मानते हैं। समग्र रूप में देखा जाए तो विद्वानों का वर्ग ब्राह्मी की उत्पत्ति को जानने के लिए जहाँ परम्परागत स्रोत का आश्रय लेते हैं, वहीं ब्राह्मी के उद्भव के विषय में आचार्य विदेशी एवं भारतीय उद्भव से संबंधित सिद्धान्तों पर भी विचार करते हैं। आचार्यों के विचारों को एक तालिका के द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है –

---

27 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 59.

28 *वही*

29 *वही*

©Indira Gandhi National Open University

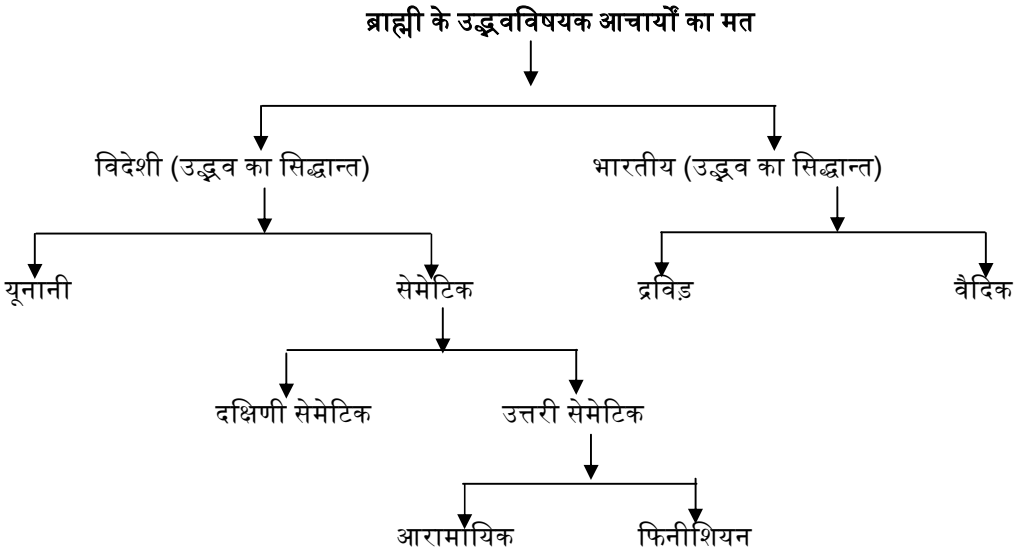

परम्परागत स्रोत पर विचार करते हुए सर्वप्रथम ब्राह्मी शब्द की व्युत्पत्ति एवं उसके अर्थ पर विचार करना स्वाभाविक है। ब्राह्मी शब्द **'ब्रह्मण इयम्'** इस अर्थ में ब्रह्मन् शब्द से अण् प्रत्यय, टि लोप तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में **ङीष्/ङीप्** प्रत्यय लगकर ब्राह्मी शब्द निष्पन्न होता है। कोशग्रंथों में इसका अर्थ दुर्गा, ब्रह्म की मूर्त्तिमती शक्ति, वाणी की देवी सरस्वती, सुरश्रेष्ठा, स्वायम्भुवी, मेध्या, भारती, सूर्यमूर्त्ति, दिव्यतेज, वाणी, कहानी, कथा, भाषा, गिर्, वाच् आदि प्राप्त होता है।[30] अमरकोषकार कहते भी हैं -

ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती।
व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः।।

आंग्लशब्दकोष में भी ब्राह्मी शब्द का अर्थ Relating to Brahman or the creator or to the supreme spirit, Belonging to Brahmans, Relating to sacred knowledge or study, prescribed by the Vedas, Vedic. Personified female energy of Brahman, Divine mothers of created beings, speech of the of goddess of speech, wife of Brahaman, a religious practice, pious usage आदि प्रयुक्त हुआ है।[31] स्पष्ट है कि प्रस्तुत प्रसंग में ब्राह्मी को ब्रह्मा से सम्बद्ध कर देखा जा सकता है, साथ ही भाषा, वाणी आदि के साथ इसकी सहयुज्यता स्वीकार की जा सकती है। पारम्परिक स्रोत से उपलब्ध सामग्री भी इसी तथ्य को उद्घाटित करती हुई इस लिपि की प्राचीनता को भी द्योतित करती है। भारतीय परम्परा के अनुकूल आचार्यों ने ब्राह्मी को सृजन के देवता ब्रह्मा के साथ संयोजितकर ब्रह्मा को इस लिपि का उद्भावक कहा है जिन्होंने ब्राह्मण एवं वेदों की रक्षा के लिए इस लिपि की उद्भावना की थी। इसे देवलिपि कहा जाता था जिसे बड़े अनुग्रह के बाद प्रयोग व प्रसारार्थ ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को प्रदान किया था। प्राचीन भारत में यह लिपि दो दृष्टियों से विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण मानी जाती थीं - (क) वेदों का संरक्षण के लिए और (ख) प्राचीन भारतीय विकसित समुन्नत व्यापार का लेखाजोखा रखने के लिए।

ऋग्वेद में उल्लिखित ब्रह्मी, जो पाणिनीयसूत्र की दृष्टि से ब्राह्मी है - से भी स्पष्ट है कि ब्राह्मी का उद्गमस्थल भारत ही रहा है। वैदिकयुग से लेकर पाणिनिकालीन इतिहास तक के अवलोकन से स्पष्ट है कि इस अवधि में भारत में लिपि की सुव्यवस्थित एवं विकसित परंपरा पूर्णतः स्थापित हो चुकी थी। विश्व के सर्वप्रथम भाषावैज्ञानिक आचार्य पाणिनि तक आते-आते स्थानीय लिपियों के साथ यवनादि बाह्य लिपियों का भी प्रचलन होने लगा था। मौर्यकाल में बाह्य लिपियों के अंकन के भी पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते हैं। जैन परम्परा से

[30] शब्दकल्पद्रुम्, भाग-3, पृ. 460-461; संस्कृत-हिन्दीकोश, पृ. 724-725.
[31] संस्कृत-आंग्लकोश, पृ. 396.

©Indira Gandhi National Open University

भी ज्ञात होता है कि जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ या ऋषभनाथ ने अपनी पुत्री बम्पी को पढ़ाने के लिए जिस लिपि का आविष्कार किया था, वह लिपि उनकी पुत्री के नाम पर ही ब्राह्मी अभिधान से विश्रुत हुई। भगवतीसूत्र के आरम्भ में ब्राह्मी लिपि का स्मरण इसी परम्परा को द्योतित करता है - **णमो बम्भिए लिविए**[32] **(नमो बम्पिए लिखिए)।** चीनी विश्वकोष फा-वान-शू-लिन में वैश्विक स्तर पर अतीतकालीन तीन लिपियों का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है, वे हैं - ब्राह्मी, कइअलू और तनसकी। यहाँ ब्राह्मी की सर्वप्रथम चर्चा करते हुए कहा गया है कि यह एक पूर्ण स्वतंत्र लिपि है, जिसका आविष्कार फान अर्थात् ब्रह्मा ने किया था तथा यह लिपि बाएँ से दाएँ लिखी जाती थी। इस लिपि का उद्भवस्थल भारत ही रहा था। ब्रह्मा से ब्राह्मी की उत्पत्ति का संकेत 580 ई. की मानी जानेवाली ब्रह्मा और सरस्वती की एक स्थानक युगलमूर्त्ति से होती है जिसकी प्राप्ति पूर्व बदामी गुफाओं के क्षेत्र में उत्खननस्वरूप हुई है। इस युगलमूर्त्ति में सरस्वती के एक हाथ में एक मुड़ी हुई पुस्तक है तथा ब्रह्मा के हाथ में ताड़पत्र का एक गुच्छा है। दसवीं सदी में भारत आए अरबी यात्री अलबिरूनी ने अपने समय में प्रचलित एक उद्धरण का उल्लेख किया है जिसके अनुसार पराशर से पहले भारतवासी लेखनकला को भूल चुके थे। दैवयोग से पराशर के पुत्र वेदव्यास ने कलियुग के आरंभ में हिन्दू-ग्रंथों के संचयन एवं लेखन के लिए लेखनकला का पुनरान्वेषण किया और तब से क्रमिक लेखनकला का प्रचलन आरंभ हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अलबेरूनी के इस चिन्तन का आधार संभवतः विष्णुपुराण का वह अंश रहा हो जहाँ इस बात की चर्चा है कि बहुत समय तक इस आर्षपुराण का ज्ञान लुप्त हो गया था जिसे ब्रह्मा ने ऋभुओं के प्रति प्रवर्तित किया था एवं नागों के द्वारा सुना-सुनाया जाता था। पुलस्त्य के वरदान से पराशर को वह स्मरण हो गया तथा उन्होंने ज्यों का त्यों मुनिसत्तम को सुनाया। अलबेरूनी के उक्त विमर्श के आधार पर डॉ. शिवस्वरूप सहाय का कहना है कि यह विमर्श सिन्धु घाटी और वैदिक साहित्य के बीच की अज्ञात कड़ी की ओर संकेत करता है[33] यद्यपि अन्य स्रोत में इस प्रकार की चर्चा के अनुपलब्ध होने से यह विमर्श आज भी गवेषण का विषय है। स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य, बौद्धसाहित्य, जैन साहित्य, भारतीय, चीनी, अरबी, यूनानी, लंकादि से प्राप्त पारम्परिक एवं आनुश्रौतिक प्रमाण, सिन्धुघाटी से प्राप्त पुरातात्त्विक स्रोत आदि के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि ब्राह्मी लिपि के प्रचलन का इतिहास भारतीय सन्दर्भ में आद्य-ऐतिहासिक काल से ही रहा होगा एवं इसका उद्गमस्थल भी भारत ही रहा होगा। फिर भी पारम्परिक स्रोत के अतिरिक्त ब्राह्मी लिपि के उद्भव के विषय में विदेशी एवं स्वदेशी उद्भव के सिद्धान्तों पर विचार करना स्वाभाविक एवं समीचीन होगा जिससे तार्किक व यथार्थ रूप में सत्य की स्थापना संभव हो सके।

आधुनिक प्राच्य एवं प्रतीच्य विद्वानों ने ब्राह्मी के उद्भव के विषय में जिन मतों की चर्चा की है उनके आलोड़न से दो बातें मुख्य रूप से निकलकर सामने आती हैं – 1. ब्राह्मी लिपि का उद्भव विदेशों में हुआ अर्थात् ब्राह्मी लिपि के विषय में विदेशी उद्भव का सिद्धान्त। विदेशी उत्पत्ति के विषय में आचार्य एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान् ब्राह्मी के सन्दर्भ में यूनानी उत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं तो अनेक विद्वान् ऐसे हैं जो सेमेटिक मूल से भारतीय ब्राह्मी की उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं। सेमेटिक मध्यपूर्व में उत्पन्न सामी भाषाभाषी लोग हैं। सामी भाषा में इब्रानी भाषा, अरबी भाषा, अक्कादी भाषा, आरामाईक भाषा, गिइज भाषा, माल्टीज, आधुनिक हिब्रू, फ़ोनीशियाई भाषा, अम्हारिक भाषा, टिग्रिन्या, टाइग्रे आदि शामिल हैं। सेमेटिक भाषा सामी-हामी भाषा परिवार की एक उपशाखा है। इस भाषा परिवार की भाषाएँ मध्यपूर्व, उत्तरी अफ्रीका और अफ्रीका के सींग के क्षेत्रों में बोली जाती है। सन् 3000 ई. पूर्व में सुमेर सभ्यता द्वारा विकसित अंकन लिपि या कीलाकार लेखन प्रणाली (क्यूनीफ़ार्म) का प्रयोग एब्लाई और अक्कादी भाषाओं के लिए आरम्भ हो गया था, जो सेमेटिक भाषाएँ थीं। सेमेटिक भाषाएँ अब इब्रानी, सीरियाई, अरबी और गेएज लिपि में लिखी जाती हैं। सेमेटिक भाषाओं में अक्सर स्वरों का प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि अधिकतर सेमेटिक भाषाओं में अर्थ व्यंजनों से ही आता है। आधुनिक काल में सेमेटिक लोगों का मुख्य समुदाय अरबी और यहूदी लोग हैं। अरब, इथियोपिया के हब्शी, मिज़राही यहूदी, असीरियाई एवं माल्टा द्वीप के लोग सेमेटिक भाषा का प्रयोग करते हैं। (The semetic languages are a family of related langauges that

---

[32] भारतीय प्राचीन ग्रंथमाला, पृ. 57. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ. 14.

[33] भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ. 1.

©Indira Gandhi National Open University

includes Arabic, Aramaic, Hebrew and Ugaritic). सेमेटिक भाषाएँ एफ्रो-एशियाटिक भाषा संघ की एक शाखा बनाती है। इस समूह के सदस्य संपूर्ण उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण-पश्चिम एशिया में फैले हुए हैं और उन्होंने 4000 से भी अधिक वर्षों से मध्य-पूर्व के भाषायी और सांस्कृतिक परिदृश्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सेमेटिक लिपि से भारतीय ब्राह्मी की उत्पत्ति माननेवाले आचार्यों में भी वैचारिक समानता का अभाव है। सेमेटिक वर्णों की विविध शाखाओं में से किस शाखा ने भारतीय ब्राह्मी को प्रभावित किया है, इस बात को लेकर उनके वैचारिक मतभेद को सामान्यतः तीन भागों में विभाजित कर देखा जा सकता है -

1. क्या दक्षिणी सेमेटिक मूल के वर्णों ने भारतीय ब्राह्मी को प्रभावित किया?

2. क्या उत्तरी सेमेटिक मूल के वर्णों ने भारतीय ब्राह्मी को प्रभावित किया?

3. क्या फोनिशियन मूल के वर्णों ने भारतीय ब्राह्मी का पोषण किया? फ़ोनीशिया मध्यपूर्व के उर्वर अर्धचन्द्र के पश्चिमी भाग में भूमध्यसागरीय तट पर स्थित एक प्राचीन सभ्यता थी जो 1550 से 300 ई. पूर्व के काल में भूमध्यसागर के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में फैल गयी थी। प्राचीन यूनानी एवं रोमन लोग इन्हें जामुनी-रंग के व्यापारी कहा करते थे। माना जाता है कि इन लोगों ने जिन अक्षरमाला का प्रयोग किया उस पर विश्व की प्रमुख अक्षरमालाएँ आधृत थीं। देवनागरीसहित भारत की समस्त वर्णमालाएँ इसकी संतानें हैं - ऐसा माना जाता है। फोनीशियाई वर्णमाला का विकास लगभग 1050 ई. पूर्व में हुआ तथा प्राचीन यूनानी सभ्यता के उदय के साथ-साथ इसका अंत हो गया। फोनीशियाई भाषा प्राचीन सेमेटिक भाषा का ही अंग है जो अब विलुप्त हो चुकी है। इब्रानी भाषा के साथ इसका निकटतम संबंध रहा है। फोनीशिया भूमध्यसागर की पूर्वी तट के साथ प्राचीन क्षेत्र है जो आधुनिक सीरिया एवं इजरायल के आसपास के क्षेत्रों के साथ-साथ आधुनिक लेबनान के साथ मेल खाता है।

भारतीय ब्राह्मीविषयक विदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त के अतिरिक्त स्वदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त की चर्चा भी आवश्यक है। यह ठीक है कि स्वदेशी उद्भव के सर्वमान्य सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी यहाँ विद्वानों के विचारों में मतभेद दिखाई पड़ता है। यहाँ वैचारिक चिन्तन की भिन्नता के आधार पर स्वदेशी या भारतीय उद्भव के सिद्धान्तों का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जाता है -

1. क्या ब्राह्मी लिपि के उद्भव का श्रेय द्रविड़ लोगों को दिया जाए? तथा

2. क्या ब्राह्मी की उत्पत्ति का श्रेय भारतीय आर्यों या वैदिकमूल के आर्यों को दिया जाए?

पूर्वोक्त विदेशी एवं स्वदेशी अवधारणाओं के आलोक में ब्राह्मी लिपि के उद्भव के विषय में विचारकर एक निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है। अतः दोनों दृष्टियों का अन्वेषणपूर्वक सूक्ष्म अवलोकन आवश्यक है।

(क) विदेशी उद्भव का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सर्वप्रथम ब्राह्मीलिपि के उत्पत्तिविषयक यूनानी उद्भव के सिद्धान्त पर विचार करते हैं।

1. यूनानी उद्भव का सिद्धान्त

इस मत के प्रतिपादक आचार्य डॉ. ऑफ्रेड् मूलर, जेम्स प्रिंसेप, रावेल डी. रोशे, स्माइल सेनार्ट, गोब्लेत डि.-अल्वील्ल, जोजेफ हालवी, विल्सनादि हैं।[34] उक्त आचार्यों का मानना है कि ब्राह्मी लिपि का उद्भव यूनानी लिपि से हुआ। मूलर का कहना है कि सिकंदर के भारतीय आगमन के साथ ही यूनानी लोगों का भी भारत में

[34] भारतीय पुरालिपि, पृ. 37.

©Indira Gandhi National Open University

आगमन हुआ। यूनानी लोगों के आगमन के साथ ही यूनानी लिपि से भी भारतीय परिचित हुए और उनसे अक्षर सीखे।[35] प्रिन्सेप और सेनार्ट का भी मानना है कि यूनानी लिपि के सम्पर्क से ही ब्राह्मी लिपि का निर्माण हुआ।[36] विलसन् ने यूनानी अथवा फिनिशियन लिपि से ब्राह्मी का उद्भव माना।[37] हलवे का कहना है कि ब्राह्मी एक मिश्रित लिपि है जिसके आठ व्यंजन तो ज्यों के त्यों ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी के अरमइक अक्षरों से, छह व्यञ्जन, दो प्राथमिक स्वर, सभी मध्यवर्ती स्वर और अनुस्वार आरिअनों-पाली (खरोष्ठी) से और पाँच व्यंजन तथा तीन प्राथमिक स्वर प्रत्यक्ष या गौणरूप से यूनानी लिपि से लिये गये हैं और यह मिश्रण 325 ई. पूर्व के लगभग सिकन्दर के इस देश में आने के बाद हुआ माना जाता है।[38] स्पष्ट है कि सिकन्दर के साथ आनेवाले यूनानी लोगों के सम्पर्क के परिणामस्वरूप भारत में लेखनकला व ब्राह्मी लिपि का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। यह भी मानना है कि यूनानी लिपि फाइनीशियनों ने व्यापार के माध्यम से भारत लाया और इससे ही भारत में ब्राह्मी लिपि का प्रचलन आरम्भ हुआ।

यूनानी लिपि से भारतीय ब्राह्मी की उत्पत्तिविषयक दोनों ही विचार पूर्णतः भ्रामक एवं अप्रासंगिक प्रतीत होते हैं। यह ठीक है कि भारत के लोगों का यूनानी लोगों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय ही हुआ था किन्तु इस सम्पर्क से बहुत पहले ही भारत में लेखनकला का पूर्ण विकास हो चुका था। बूलर महोदय का भी कहना है कि भारत के लोग आठवीं एवं नवीं शताब्दी ई. पूर्व में ही लेखनकला से परिचित थे। उनका कहना है कि मौर्यकाल से अनेक शताब्दी पूर्व ही भारत में ब्राह्मी का प्रयोग होता था तथा प्राचीनतम उपलब्ध भारतीय अभिलेखों के समय तक इसका एक लम्बा इतिहास रहा है। दूसरा मत की फोइनीशियन व्यापारियों के माध्यम से यूनानी लिपि भारत में आई और उससे भारतीय लिपि की उत्पत्ति हुई - यह मत भी मान्य नहीं है। कारण यह है कि यूनानी लिपि की उत्पत्ति से बहुत पहले ही फोइनीशियन लिपि प्रकाश में आ चुकी थी। माना जाता है कि जब व्यापार के क्रम में यूनानी व्यापारी फोइनीशियन व्यापारी के साथ सम्पर्क में आये तब सम्भव है कि यूनानी व्यापारियों ने फोइनीशियन लिपि से प्रभावित होकर लेखन कार्य आरम्भ किया हो। भूमध्यसागर के तट पर अपनी बस्तियाँ बसाकर निवास करनेवाले फोइनीशिया के लोग भारतीय मूल के ही माने जाते हैं, जिन्हें ऋग्वेद में पणी कहा जाता था और जो व्यापार के क्रम में वहाँ पहुँचे थे। अतः स्पष्ट है कि फोइनीशियन लिपि भारतीय मूल की लिपि थी और इस लिपि ने यूनानी लेखन कला के इतिहास को प्रभावित किया था। इस दृष्टि से भारतीय लिपि ने ही यूनानी लिपि के उद्भव को सम्भव बनाया, न कि यूनानी लिपि ने भारतीय लिपि की उद्भावना में अपनी भूमिका अदा की। इसके साथ ही विद्वानों का मानना है कि यूनानी और ब्राह्मी लिपि के अक्षरों की संरचना में कोई समानता दिखाई नहीं पड़ती है। डीग्लेव का मानना है कि भारतीय लिपि के आकार और ध्वनियों को यूनानी लिपि से समीकृत नहीं किया जा सकता है।[39] यह भी स्पष्ट है कि पाणिनि ने अपने ग्रंथ में जिन वैयाकरणों का उल्लेख किया है उस समय तक भारतीय वर्णमाला अत्यंत सुव्यवस्थित हो चुकी थी जबकि दूसरी ओर यूनानी लिपि के इतिहास में उस समय तक अक्षरों की पदात्मकता से छूटने का काल था। किसी भी लिपिशास्त्रीय एवं साहित्यिक प्रमाणों से अबतक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि यूनानी और भारतीय लिपि के अक्षर में किसी तरह की समानता थी। एक और बात यह है कि यदि यूनानी लिपि से भारतीय लिपि की उत्पत्ति हुई होती तो अशोक के अभिलेखों में दोनों का पृथक्-पृथक् प्रयोग नहीं किया जाता। स्पष्ट है कि अशोक के समय में भारतीय एवं यूनानी लिपि का स्वतंत्र अस्तित्व था तथा दोनों लिपियाँ साथ-साथ प्रचलित थीं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय लिपि नहीं, बल्कि यूनानी लिपि ही फोइनीशियन लिपि के रूप में भारतीय लिपि का ऋणी रहा है। अतः यूनानी लिपि से भारतीय लिपि की उत्पत्ति का सिद्धान्त कतई स्वीकार्य नहीं हो सकता है।

---

35 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 59-60.

36 *वही*, पृ. 60.

37 *वही*

38 *वही*

39 भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ. 15.

©Indira Gandhi National Open University

2. सेमेटिक उद्भव का सिद्धान्त

आचार्यों का एक वर्ग ऐसा है जो सेमेटिक मूल की लिपि से भारतीय लिपि की उत्पत्ति का निरूपण करते हैं। इस मत के प्रतिपादक आचार्यों में सर विलियम जोन्स, कॉप्प, लेप्सिअस्, बेवर, बेन्फी, पॉट, वेस्टरगार्ड, मैक्समूलर, फ्रेड्रिख मूलर, साइस, ह्विटनी, कस्ट, स्टिवन्सन्, पॉल गोल्डस्मिथ्, ई. मूलर, बर्नेल, लेनोर्मंट, डीके, आइज़क् टेलर, एडवर्ड क्लॉड, वूलर, डॉ. राइस डेविड्ज, डॉ. बार्नेट आदि हैं। इस प्रकार सेमेटिक मूल की लिपि से ब्राह्मी का उद्भव मानने वाले आचार्यों की एक बड़ी संख्या रही है। चूँकि सेमेटिक मूल की भाषाएँ कई शाखाओं में विभक्त हैं अतः इन विद्वानों के मध्य मतभेद इस बात को लेकर है कि सेमेटिक मूल की किस शाखा ने ब्राह्मी लिपि की उद्भावना को प्रभावित किया। विद्वानों ने ब्राह्मी को प्रभावित करनेवाले सेमेटिक मूल के वर्णों को विशेषतः तीन वर्गों में विभाजित कर विवेचन किया है, वे हैं - दक्षिणी सेमेटिक, उत्तरी सेमेटिक एवं फोइनिशियन। इन तीनों का क्रमशः निरूपण इस प्रकार है -

(i) दक्षिणी सेमेटिक - दक्षिणी सेमेटिक मूल के वर्णों से ब्राह्मी लिपि के प्रभावित होने सम्बन्धी मत का निरूपण मुख्य रूप से टेलर, डीके और केनन ने किया है।[40] सामान्यतः फिनिशियन लिपि से निकली हुई लिपियों में से हिमिअरेटिक (सेबिअन्), इथिओपिक्, कूफी और अरबी आदि दक्षिणी सेमेटिक लिपियाँ हैं जबकि अरमइक्, सीरिअक् और चाल्डिअन् उत्तरी सेमेटिक लिपियाँ हैं। डीके का मानना है कि ब्राह्मी लिपि असीरिया की क्युनिफार्म लिपि से, किसी प्राचीन दक्षिणी सेमेटिक लिपि के द्वारा, जिससे हिमिअरेटिक् लिपि निकली है, बनी है।[41] यूरोपियन विद्वानों के अनुसार क्युनिफॉर्म उस लिपि को कहते हैं जिसके अक्षर तीर के फल (arrowheaded) की आकृति के कई चिह्नों को मिलाने से बनते हैं। इसे अंकन लिपि, कीलाक्षर लिपि एवं प्रेसिपोलिटेन भी कहा जाता है। इस अतिप्राचीन एवं विचित्र लिपि के लेख असीरिया, बेबोलीन तथा ईरान आदि में मिलते हैं। ईरान के प्रसिद्ध शासक दारा प्रथम (ई. पूर्व 521-485) ने अपना वृत्तान्त इसी लिपि में बेहिस्तान नामक स्थान की चट्टान पर खुदवाया था।[42]

आइजक टेलर का कहना है कि ब्राह्मी लिपि किसी अज्ञात दक्षिणी सेमेटिक लिपि से निकली होगी। वे आगे लिखते हैं कि यद्यपि यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि वह किस लिपि से निकली है, फिर भी अरब का एक प्रदेश ओमन् या अरब के दक्षिणी तट का क्षेत्र हॅड्रॅमाँट या ईरानी समुद्र तट का प्राचीन शहर ओर्मज् आदि के खंडहरों से उसका पता एक न एक दिन लगना संभव है।[43] टेलर का मत अनुमान पर ही आधारित है। डीके और केनन के कथन से भी स्पष्ट होता है कि ब्राह्मी वर्ण दक्षिणी सेमेटिक वर्ण से ही उद्भूत है।

उक्त आचार्यों के मत स्वीकार्य नहीं हो सकते क्योंकि एक तो अरब आक्रमण से पूर्व भारतीय संस्कृति पर अरबी प्रभाव का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है। साथ ही भारतीय और अरबी अथवा दक्षिणी सेमेटिक वर्णों में समानता का सर्वथा अभाव है। यह ठीक है कि भारत और भूमध्यसागर के मध्य अवस्थित होने से अरब और भारत के बीच सम्बन्ध सम्भव है किन्तु उससे भारतीय लिपि प्रभावित हुई इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। अतः ब्राह्मी एवं दक्षिणी सेमेटिक वर्णों में समता अत्यन्त नगण्य होने से भारतीय लिपि का दक्षिणी सेमेटिक से प्रभावित होना कोरी-कल्पनामात्र कही जाएगी।

(ii) उत्तरी सेमेटिक - उत्तरी सेमेटिक लिपि से भारतीय लिपि प्रभावित हुई - इस मत के प्रमुख प्रतिपादक आचार्य बूलर हैं। 1895 ई. में बूलर ने 'भारतवर्ष की ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति' विषयक एक छोटी अंग्रेजी पुस्तिका लिखी।[44] यद्यपि यहाँ बूलर ने वेबर के मत का अनुकरण किया है तथा बूलर द्वारा निरूपित मत की स्वीकृति प्रो. मॅक्डॉनल्ड, डॉ. राइस डेविड्ज, डॉ. बार्नेट, प्रो. रॅपसन् आदि ने किया है। बूलर का

---

40 भारतीय पुरालिपि, पृ. 38.
41 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 61.
42 *वही*
43 *वही*
44 *वही*, पृ. 62.

©Indira Gandhi National Open University

मानना है कि दक्षिणी सेमेटिक से ब्राह्मी की उत्पत्ति के विषय में जिन कठिनाइयों का अनुभव किया गया था उसका निराकरण फोनिशिया से लेकर मेसोपोटामिया तक समान रूप में दिखाई पड़नेवाले प्राचीन उत्तरी सेमेटिक वर्णों से ब्राह्मी वर्ण का उद्भव मानने पर हो जाता है। डॉ. बूलर उत्तरी सेमेटिक वर्णों से ब्राह्मी की उत्पत्ति को बतलाते हुए प्राचीन भारतीय वर्णों की निम्न विशेषताओं का उल्लेख करते हैं -

1. वर्ण यथासम्भव सीधे रखे जाते हैं तथा ट, ठ और ब चिह्नों के विरल अपवादों को छोड़कर उनकी ऊँचाई समान रखी जाती है।

2. अधिकांश वर्ण सीधी/खड़ी रेखाओं से बने हैं। इनमें जोड़ की रेखाएँ प्रायः नीचे की ओर लगी है। कहीं-कहीं बिल्कुल ऊपर या बिल्कुल नीचे तथा शायद ही कभी मध्य भाग में है। किन्तु किसी भी उदाहरण में केवल शीर्ष भाग पर योग नहीं है।

3. वर्णों के शिरोभाग पर अधिकतर खड़ी रेखा का सिरा पाया जाता है, उससे कम छोटी आड़ी पाई और इससे भी विरल रूप में अधोमुखी कोणों के शीर्षभाग पर वक्ररेखा। अपवादस्वरूप ही कुछ अक्षर ऐसे हैं जहाँ एक रूप में दो ऊपर जानेवाली रेखाओं के दर्शन होते हैं यथा म ( ) और झ ( )। किसी भी उदाहरण में, लटकती हुई रेखा के साथ त्रिभुज या वृत्त के ऊपर लटकती हुई खड़ी या तिरछी रेखा की सहायता से अगल-बगल रखे गये अनेक कोणों से युक्त शीर्षभाग नहीं मिलता है।

बूलर ने उपरिलिखित विशेषताओं की व्याख्या की। उन्होंने हिन्दुओं की निम्न प्रवृत्तियों को आधार बनाकर उत्तरी सेमेटिक वर्णों से ब्राह्मी के उद्भवविषयक सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया है -

1. एक विशिष्ट पण्डिताऊ रूढ़िवादिता का दर्शन होता है।

2. ऐसे चिह्नों को बनाने की इच्छा देखी जाती है जो यथाक्रम पंक्तियाँ बनाने में सहायक होती हैं।

3. शीर्ष गुरु वर्णों के प्रति अरुचि।

उक्त विवेचन के आधार पर बूलर का मानना है कि ब्राह्मी वर्णमाला के 22 वर्ण उत्तरी सेमेटिक वर्णमाला से, कुछ प्राचीन फोनिशियन वर्णमाला से, कुछ मोअब् के राजा मेसा के प्रस्तर अभिलेख से तथा पाँच वर्ण असीरिया के बाटों पर खुदी लिपि से निकले हैं। ब्राह्मी के शेष चिह्न भी गृहीत चिह्नों में कतिपय परिवर्तन करके बना लिये गये हैं।

उत्तरी सेमेटिक मूल से ब्राह्मी की उत्पत्ति माननेवाले आचार्यों में प्रमुख डॉ. डेविड डिरिंजर हैं।[45] उन्होंने विविध अध्ययनों के आधार पर इस विषय पर रखे गये आचार्यों के दो मतों के प्रति मुख्य रूप से अपनी सहमति प्रकट की है, वे हैं-

(i) भारतीय लिपि स्वतंत्र रूप में भारतीयों का आविष्कार नहीं है। व्यापारिक क्रियाकलापों आदि के लिए भारतीयों ने अन्यों से ग्रहण कर पर्याप्त रूप में इसे विकसित किया है।

(ii) यहाँ स्वर और व्यञ्जन ध्वनियों को विशुद्ध वर्णपरक चिह्नों द्वारा व्यक्त करने का विचार पश्चिमी एशिया से लिया गया है।

उक्त मत के समर्थन में डॉ. डिरिंजर कुछ तर्कों का आश्रय लेते हैं, वे हैं -

[45] भारतीय पुरालिपि, पृ. 40.

©Indira Gandhi National Open University

1. सामी वर्णों की तरह ब्राह्मी वर्ण भी आरंभ में दायीं ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी। अनेक ब्राह्मी चिह्नों के आकार सेमेटिक प्रभाव को सूचित करते हैं।

2. वे ऐसे विद्वानों के विचारों का उल्लेख करते हैं जिनका यह मानना है कि देखने में अक्षरात्मक होने से भारतीय लिपि किसी वर्णमाला से निःसृत नहीं है जबकि वर्णात्मक लिपि अक्षरात्मक लिपि की अपेक्षा अधिक उन्नत होती है। डॉ. डिरिंजर इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते हुए कहते हैं कि सामी वर्णमाला में स्वरों का पूर्ण अभाव था तथा आवश्यकतानुसार सामी भाषाएँ स्वरचिह्नों के बिना भी काम चला सकती थीं जबकि भारोपीय भाषाएँ ऐसा नहीं कर सकती थीं। यूनानियों ने स्वरचिह्नों की रचनाकर इसका समाधान प्राप्त किया था, भारतीय लोग यहाँ कम सफल रहे। उनका यह भी मानना है कि वर्णात्मक लेखन पद्धति के तत्त्व को ब्राह्मी के आविष्कारक नहीं समझ पाये हों। वे कहते हैं कि यह नितान्त सम्भव है कि सामी लिपि उसे अर्धाक्षरात्मक प्रतीत हुई हो, जैसा कि किसी भी भारतीय आर्यभाषा को बोलनेवाले को प्रतीत हो सकती है।

ब्राह्मी की उत्पत्तिविषयक उत्तरी सेमेटिक सिद्धान्त के विषय में आचार्यों के कथन का प्रतिपादन इस प्रकार भी सम्भव है -

(i) सेमेटिक एवं ब्राह्मी वर्णों में समता दिखायी पड़ती है।

(ii) प्राचीन भारतीय लिपि चित्रपरक थी। किसी भी वर्णात्मक लिपि की उत्पत्ति चित्रवर्णों से सम्भव नहीं है।

(iii) सेमेटिक लिपि की तरह प्राचीन परम्परा में ब्राह्मी भी दायें से बाएँ लिखी जाती थी।

(iv) ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी से पूर्व भारत में लिपि के उदाहरणों का अभाव दिखायी पड़ता है। इसी समय भारत का सम्पर्क पश्चिमी विश्व से हुआ। पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क के परिणामस्वरूप ही भारतीय अक्षरों का विकास सम्भव हो पाया।

अनेक आचार्यों, विशेषरूप से प्राच्य विद्वानों ने उक्त मतों की आलोचना की है। प्राच्यविद्वानों की आलोचना के आधार निम्न हैं -

1. यह ठीक है कि उत्तरी पश्चिमी एशिया के फोनिशियन तथा अरेमिक वर्णों और भारत की ब्राह्मी लिपि में थोड़ी समानता सम्भव है किन्तु इस आधार पर बूलर तथा उसके विचारसम्प्रदाय के विद्वानों का यह मत कतई स्वीकार्य नहीं हो सकता है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति उत्तर-पश्चिमी एशिया की अरेमिक वर्णमाला से हुई है। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा का मानना है कि लिपियों में से किसी एक लिपि के साथ भी ब्राह्मी की कुछ भी समानता होती तो इतने भिन्न मतों की आवश्यकता नहीं होती। जिस लिपि के साथ भी सामनता दिखाई पड़ती उसे ही मूल स्वीकार कर लिया जाता। दूसरी बात यह कि जब दो लिपियों की वर्णमाला का परस्पर मिलान करने का यत्न किया जाता है तब कुछ अक्षरों की आकृतियाँ परस्पर मिल ही जाती हैं चाहे उसके उच्चारणों में कितना ही अन्तर क्यों न हो। जैसे कि उर्दू के तीन और अंग्रेजी के दश अक्षर ब्राह्मी की आकृति से मिलती है किन्तु लिपियों के परस्पर संबंध को निश्चित करने की एकमात्र कसौटी समान उच्चारणवाले अक्षरों में समानता का अभाव होने से यह नहीं कहा जा सकता है कि ब्राह्मी लिपि उर्दू या अंग्रेजी से निकली है या उर्दू या अंग्रेजी ब्राह्मी से निकली है। ठीक इसी तरह सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में फिनिशियन लिपि से ग्रीक अक्षरों का निर्माण हुआ जो आरंभ में दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी और जिसे बाद में बायीं ओर से दाहिनी ओर लिखा जाने लगा जिससे कुछ अक्षरों का रुख ही बदल गया। इस परिवर्तन के फलस्वरूप उनसे प्राचीन लेटिन और लेटिन से अंग्रेजी अक्षर बने। फिनिशियन और अंग्रेजी (रोमन) अक्षरों का सम्बन्ध लगभग 2600 वर्ष पुराना है तथापि मिलान

©Indira Gandhi National Open University

करने पर केवल 13 अक्षर ही यहाँ अपने मूल फिनिशियन अक्षरों से मिलते-जुलते हैं।[46] इसी तरह अशोककालीन ब्राह्मी लिपि का हिअरेटिक, फिनिशियन आदि लिपियों के साथ मिलान करने पर यदि यह कहा जाता है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति इनमें से किसी एक से हुई है तो उस लिपि के साथ ब्राह्मी की समानता अंग्रेजी और फिनिशियन के बीच की समानता से बहुत अधिक होनी चाहिए थी क्योंकि वर्तमान अंग्रेजी की अपेक्षा ब्राह्मी का फिनिशियन के साथ लगभग 2200 वर्ष पूर्व का सम्बन्ध रहा है।[47] किन्तु जब ब्राह्मी का उक्त लिपियों के साथ मिलान किया जाता है तब जो बातें उभरकर सामने आती हैं तो उससे स्पष्ट होता है कि बूलर द्वारा प्रस्तावित व्युत्पत्ति-सिद्धान्त तर्कहीन है और उसके सिद्धान्त को यदि स्वीकार कर भी लिया जाता है तो संसार कि किसी भी ज्ञात लिपि से उसकी और उससे किसी भी ज्ञात लिपि की उत्पत्ति सिद्ध की जा सकती है, जो आधारहीन प्रतीत होती है।

2. जिस फोनिशियन लिपि से ब्राह्मी वर्णों की साम्यता का निरूपण किया जाता है वे फोनिशियन मूलतः भारतीय मूल के ही माने जाते हैं, वे वैदिक 'पणि' थे जो व्यापार के क्रम में भूमध्यसागर के तट पर बस गये थे और जो अपने साथ भारतीय लिपि को सुदूर उत्तरी-पश्चिमी एशिया ले गये। सेमेटिक लोगों से आवृत्त होने के कारण उनके वर्णों में एक बड़ा परिवर्तन हुआ। परिवर्तन होते हुए भी उन्होंने दक्षिण सेमेटिक और मिस्र के वर्णों को प्रेरित करनेवाले अरेमिक कहे जानेवाले उत्तरी सेमेटिक वर्णों को भी प्रभावित किया। इससे तो यही स्पष्ट होता है कि आकार व प्रेरणा के आधार पर अनुकरणीय ब्राह्मी लिपि से फोनिशियन या अरेमिक वर्णों ने ही किसी न किसी रूप में कोई न कोई तत्त्व ग्रहण किया।

3. यह कहना कि वर्णात्मक लिपि चित्रात्मक लिपि से निकली है - यह विचार ही भ्रमयुक्त है। यह सत्य है कि सभी प्राचीन लिपियाँ स्वभावतः चित्रात्मक थी किन्तु यह कहना कठिन है कि वर्णों के विकास में चित्रवर्णों की भूमिका कितनी रही। भारत में सिन्धुघाटी से प्राप्त लेखन का प्राचीनतम उदाहरण पूर्ण चित्रात्मक नहीं मानी जाती है बल्कि वे प्रमुख रूप से ध्वनिपरक एवं अक्षरात्मक रहे हैं जिनका झुकाव वर्णात्मकता की ओर रहा है। यहाँ प्रयुक्त अनेक चिह्न जिन्हें भ्रमवश चित्रवर्ण माना जाता है, वस्तुतः ध्वनिव्यंजक चिह्नों के योगमात्र हैं। इस दृष्टि से सिन्धुघाटी की लिपि के साथ ब्राह्मी की संयोज्यता तथा उसकी उत्पत्ति पर विचार करना भी अपेक्षित है।

4. यह कहना कि ब्राह्मी आरम्भ में दाएँ से बायें लिखी जाती थी और इस आधार पर सेमेटिक मूल से उसकी उत्पत्ति का प्रतिपादन करना निर्बल, तर्कहीन एवं संशययुक्त सामग्रियों पर आधृत है। बूलर महोदय के इस संदेहयुक्त चिन्तन का आधार है -

   - अशोक के धौली, जौगड़ादि से प्राप्त अभिलेखों के कुछ अक्षर
   - मद्रास के कर्नूल जिले से प्राप्त अशोक के एरागुड्डी शिलालेख के अक्षर
   - मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले के एरण से प्राप्त सिक्के पर अंकित अक्षर

   अशोककालीन शिलालेखों या एरण के सिक्कों पर कुछ अक्षरों के दाएँ से बाएँ लिखे जाने की प्रतीति के अपने कुछ कारण हो सकते हैं -

   - लेखकों के हस्तदोष या देशभेद के कारण

[46] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 62.
[47] *वही*, पृ. 63.

©Indira Gandhi National Open University

- सिक्कों पर उत्कीर्ण उक्त दोष कभी-कभी साँचा बनानेवाले या ठप्पा लगानेवाले की गलती के कारण भी संभव हो जाता है।

हुल्श और फ्लीट जैसे पुरातत्त्ववेत्ताओं ने उक्त विचार के आधार पर ही बूलर के उक्त मत को स्वीकार नहीं किया है।[48] जहाँ तक एरागुड्डी का प्रश्न है तो विद्वानों के कथन से प्रतीत होता है कि लेख-उत्कीर्णक ब्राह्मी से अभ्यस्त होते हुए भी यहाँ एक नवीन प्रयोग कर रहे थे जहाँ पहली पंक्ति बाएँ से दाएँ तथा दूसरी पंक्ति दाएँ से बाएँ रखी गई है। साथ ही यहाँ दायीं ओर से बायीं ओर लिखी गयी पंक्तियों में केवल स्थान परिवर्तित कर दिया गया है, उनका रूप नहीं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ का प्रयोग एक कृत्रिम प्रयोग है जिसका ब्राह्मी के मूल से कोई सम्बन्ध नहीं है।

5. पाँचवीं शताब्दी ई. पूर्व से पहले भारतीय इतिहास में अक्षरों को लिखने की परम्परा का प्रत्यक्ष रूप से अभाव था - बूलर का यह मत सर्वथा हास्यास्पद प्रतीत होता है। स्वयं बूलर ने भी स्वीकार किया है कि कोई वैदिक ग्रन्थ जिसमें लेखन का निर्देश नहीं है, अवश्य ही उस समय रचा गया होगा जब लेखन भारत में अज्ञात थी, त्याग देना चाहिए। अतः बूलर के चिन्तन में ही यहाँ विरोध दिखाई पड़ता है। दूसरी ओर देखा जाए तो प्राग्बौद्धकाल में लेखन की विद्यमानता के सूचक असंख्य साहित्यिक सामग्रियाँ उपलब्ध मिलती हैं। आज भी अधिक प्राचीनकालीन अवशेषों तक हमारी पहुँच नहीं बन सकी है। साथ ही सिन्धु घाटी से प्राप्त अभिलेखों यथा - चित्रलेखों, भावलेखों एवं ध्वन्यात्मक लेखों का मिलना इस बात को प्रमाणित करता है कि वहाँ लेखनकला किसी न किसी रूप में विद्यमान थी। अतः ब्राह्मी के पूर्व रूप के अन्वेषण के लिए कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

6. एक बात और कि हियेरेटिक, फिनिशियन आदि लिपियों के साथ जब ब्राह्मी का अध्ययन किया जाता है तो जो बातें उभरकर सामने आती हैं, वे हैं -

(i) इजिप्ट (मिस्र) की हिअरेटिक लिपि का एक भी अक्षर समान उच्चारणवाले ब्राह्मी अक्षर से नहीं मिलता है।

(ii) असीरिया की क्युनिफॉर्म लिपि से न तो फिनिशियनादि सेमेटिक लिपियों का और न ब्राह्मी का निकलना सम्भव है।

(iii) फिनिशियन लिपि की वर्णमला के बाईस अक्षरों में से केवल एक 'गिमेल्' (ग) अक्षर ब्राह्मी के ग से मिलता है।

(iv) प्राचीन ग्रीक (यूनानी) लिपि के दो अक्षर गामा (ग) और थीरा (थ) ब्राह्मी के ग और थ से मिलते हैं।

(v) अरमइक लिपि में से केवल एक गिमेल अक्षर 'ग' से मिलता है।

(vi) खरोष्ठी लिपि की वर्णमाला के 37 अक्षरों में से एक भी अक्षर ब्राह्मी लिपि से नहीं मिलता है

उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि बूलर का मत स्वयं संदिग्ध व अस्पष्ट है। वस्तुतः किसी भी ज्ञात वर्णमाला से ब्राह्मी की उत्पत्ति पर चर्चा करने से पहले ब्राह्मी की अपनी विशेषताओं पर ध्यान देना भी आवश्यक है, वे हैं -

1. प्रायः सभी उच्चरित ध्वनियों के लिए ब्राह्मी में स्वतंत्र और असंदिग्ध चिह्न विद्यमान हैं।

[48] भारतीय पुरालिपि, पृ. 43.

©Indira Gandhi National Open University

2. उच्चरित अक्षर और लिखित वर्ण में अभिन्नता की स्थिति है।

3. स्वरों और व्यञ्जनों के लिए सबसे अधिक चिह्न हैं। इसकी संख्या 64 है।

4. ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के लिए भिन्न-भिन्न चिह्न यहाँ दिखाई पड़ते हैं।

5. अनुस्वार (ं), अनुनासिक (ँ) तथा विसर्ग (:) के लिए चिह्न।

6. उच्चारण-स्थान के अनुसार वर्णमाला का ध्वन्यात्मक वर्गीकरण।

7. मात्राओं की सहायता से व्यञ्जनों के साथ स्वरों का योग।

उत्तरी सेमेटिक वर्णमाला में इन विशेषताओं का सर्वथा अभाव है। उत्तरी सेमेटिक वर्णमाला में 18 ध्वनियों के लिए 22 चिह्न हैं। यहाँ उच्चरित अक्षरों तथा लिखित वर्णों में साम्य नहीं है। एक ध्वनि के लिए यहाँ अनेक चिह्न हैं। यहाँ ह्रस्व और दीर्घ स्वर में कोई भेद नहीं है तथा अनुस्वार और विसर्ग के लिए कोई चिह्न भी नहीं है। सेमेटिक वर्णमाला में स्वरों और व्यञ्जनों का मेल नहीं हो सकता। यहाँ स्वर व्यञ्जन के बाद लिखे जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उत्तरी सेमिटिक लिपि से ब्राह्मी लिपि का उद्भववविषयक सिद्धान्त मान्य नहीं हो सकता।

3. फोनिशियन उद्भव का सिद्धान्त

इस मत के प्रतिपादक आचार्य वेबर, बेन्फे, जानसन, बूलर प्रभृति आचार्य हैं।[49] इन आचार्यों का मानना है कि ब्राह्मी अक्षरों का उद्भव फोनिशियन लिपि से हुआ है। इस मत के समर्थक आचार्यों का कहना है कि लगभग एक तिहाई फोनिशियन वर्ण ब्राह्मी चिह्नों के प्राचीनतम रूप के समान हैं, एक तिहाई अन्य वर्ण ब्राह्मी वर्ण से कुछ-कुछ साम्य रखते हैं तथा शेष में न्यूनाधिक समता देखी जा सकती है। ब्राह्मी और फोनिशियन वर्ण में बहुत हद तक समता को देखते हुए भी यह कहना कि ब्राह्मी फोनिशियन लिपि की उपज है - उचित प्रतीत नहीं होता है। अनुचित प्रतीति के कुछ कारण यहाँ इस प्रकार हैं -

1. ब्राह्मी लिपि के प्रादुर्भाव के समय भारत और फोनिशिया के मध्य कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था।

2. फोनिशियन लिपि का प्रभाव पश्चिमी एशिया की पड़ोसी लिपियों पर भी प्रायः नगण्य माना जाता है। फिनिशियन तथा पश्चिमी एशिया के सेमेटिक अक्षरों में समता का पूर्ण अभाव दिखाई पड़ता है।

3. ब्राह्मी लिपि के उद्भव के समय तक फिनिशिया में किसी लिपि का विकास नहीं हुआ था।

4. ब्राह्मी और फोनिशयन लिपि की समता को देखते हुए यह प्रश्न तो उठता है कि दोनों में से कौन किसके ऋणी हैं?

यूनानी इतिहासकारों का मानना है कि फोनिशियन लोग भूमध्यसागर के पूर्वी तट पर समुद्रमार्ग से पूर्व से आये थे। फोनिशियन एवं पश्चिमी एशिया के सेमेटिक वर्णों में साम्य का अभाव भी इस बात को सूचित करता है कि फोनिशियन लोग इस क्षेत्र में बाहर से आये थे। ऋग्वैदिक प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि फोनिशियन लोग भारतीय मूल के रहे हैं, ऋग्वेद में इन्हें पणि कहा गया है और ये व्यापार के सिलसिले में वहाँ जाकर बस गये थे। इससे यह सम्भव प्रतीत होता है कि फोनिशियन वर्णमाला भूमध्यसागर के तट पर

[49] भारतीय पुरालिपि, पृ. 37.

©Indira Gandhi National Open University

भारत से ले जायी गई थी। इस दृष्टि से तो भारतीय लेखनकला ने फिनिशियन लेखनकला को प्रभावित किया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षस्वरूप कह सकते हैं कि ब्राह्मी की उत्पत्तिविषयक फिनिशियन उद्भव का सिद्धान्त स्वीकार्य नहीं हो सकता। पं. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा का सत्य कथन है कि न तो ब्राह्मी लिपि के अक्षर फिनिशियन या अन्य किसी लिपि से उद्भुत हैं और न ही उसकी बायीं ओर से दाहिनीं ओर लिखने की प्रणाली किसी और लिपि से बदलकर बनाई गई है। यह भारतवर्ष के आर्यों का, अपनी गवेषणा से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांगसुन्दरता के कारण ही इसे इसके कर्त्ता ब्रह्मा से जोड़कर ब्राह्मी कहा गया हो अथवा साक्षरसमाज ब्राह्मणों की लिपि होने से इसे ब्राह्मी कहा गया हो, पर इसमें सन्देह नहीं है कि इसका फिनिशियन से कुछ भी संबंध नहीं रहा था।[50]

(ख) ब्राह्मी की उत्पत्तिविषयक भारतीय/स्वदेशी उद्भव का सिद्धान्त

ब्राह्मीविषयक विदेशी उद्भव का सिद्धान्त भ्रान्तियों तथा विरोधाभासों से भरा हुआ है तथा इससे किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। ब्राह्मीविषयक भारतीय उद्भव के सिद्धान्त के सन्दर्भ में जब पूर्वोक्त विदेशी उद्भव के सिद्धान्त का अध्ययन किया जाता है तब विदेशी उद्भव का सिद्धान्त ताश के पत्ते की भाँति बिखर जाता है। अतः स्वाभाविक ही है कि भारतीय उद्भव के सिद्धान्तों पर भी विचार किया जाए। अनेक भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने मुक्तकंठ से ब्राह्मी की उत्पत्ति के विषय में भारतीय उद्भव के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। एडवर्ड थॉमस का कहना है कि ब्राह्मी अक्षर भारतवासियों के ही बनाये हुए हैं और उनकी सरलता से उनके बनानेवालों की बड़ी बुद्धिमानी प्रकट होती है।[51] प्रो. डाउसन ने लिखा है कि ब्राह्मी लिपि की विशेषताएँ सब तरह से विदेशी उत्पत्ति से उसकी स्वतंत्रता को प्रकट करती है और विश्वास के साथ आग्रहपूर्वक कहा जा सकता है कि सभी तर्क और अनुमान उसके स्वतंत्र आविष्कार होने के पक्ष में ही है।[52] जनरल कनिंघम का मानना है कि ब्राह्मी लिपि भारतवासियों की निर्माण की हुई स्वतंत्र लिपि है।[53] प्रो. लैसन ब्राह्मी लिपि की विदेशी उत्पत्ति के कथन को सर्वथा अस्वीकार करता है।[54] इसी तरह डॉ. शामशास्त्री, डॉ. मार्शल, जॉन डाउसन, डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल, डॉ. गौरीशंकर ओझा, डॉ. राजबली पाण्डेय आदि ऐसे विद्वान् हैं जिन्होंने भारतीय उद्भव के सिद्धान्त का सफल निरूपण किया है। किन्तु भारतीय उद्भव के सिद्धान्त को भी आचार्यों ने दो दृष्टियों से विवेचित किया है, वे हैं – 1. द्रविड़ उद्भव का सिद्धान्त और 2. आर्य या वैदिक उद्भव का सिद्धान्त। उक्त दोनों स्रोतों के अध्ययनोपरान्त ही कोई निश्चित निष्कर्ष निकालना समीचीन होगा।

1. द्रविड़ उद्भव का सिद्धान्त

इस मत के प्रतिपादक आचार्य एडवर्ड टॉमस, लैसनादि आचार्य हैं। इस मत के अनुयायी आचार्यों का मानना है कि ब्राह्मी वर्णों के आविष्कार का श्रेय द्रविड़ लोगों को है जिसका अनुकरण व अनुसरण आर्यों ने किया था। इस मत का आधार है कि आर्यों के आगमन व प्रसार से पूर्व द्रविड़ों का सम्पूर्ण भारत पर अधिकार था तथा सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध होने के कारण उन्होंने आर्य-आगमन से पूर्व एक लेखनकला या लिपि का आविष्कार किया था। किन्तु यह सम्पूर्ण चिन्तन ही कोरी कल्पनामात्र प्रतीत होती है। अतः यह सिद्धान्त ही संदेहयुक्त है। सन्देह के कई कारण हैं -

---

50 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 76.
51 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 77.
52 *वही*
53 *वही*
54 *वही*

©Indira Gandhi National Open University

(i) यह सिद्ध हो चुका है कि आर्य मूलतः भारतीय ही थे जिसका प्रसार उत्तर पश्चिम से पूर्व भारत की ओर हुआ था। उत्तरी भारत में ही ब्राह्मी का विशिष्ट प्रचार-प्रसार हुआ। द्रविड़ों का आदि प्रदेश दक्षिण भारत था।

(ii) द्रविड़ भाषाओं का विशुद्धतम वर्तमान प्रतिनिधि तमिल में केवल प्रथम एवं पञ्चम वर्ण का प्रयोग देखा जाता है जबकि ब्राह्मी में या प्राचीनतम आर्यभाषा में वर्ग के पाँच वर्णों का प्रयोग पाया जाता है।

(iii) ध्वन्यात्मक दृष्टि से भी देखा जाता है कि तमिल के अल्पसंख्यक वर्ण सम्पन्न ब्राह्मी वर्णों से गृहीत प्रतीत होते हैं।

(iv) ध्वनिशास्त्र के आधार पर भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मी से तमिल लिपि का विकास हुआ। स्पष्ट है कि दक्षिण में लिपियों का प्रसार उत्तर भारत की लिपि के सम्पर्कस्वरूप ही हुआ जिनमें स्थानीय भिन्नता के कारण व्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

स्वदेशी सिद्धान्त के अन्तर्गत कल्पनाधारित उक्त मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

2. आर्य या वैदिक उद्भव का सिद्धान्त

इस मत के प्रतिपादक कनिंघम, डाउसन, मार्शल, डॉ. आर. शामशास्त्री, डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल, डॉ. ओझा, डॉ. राजबली पाण्डेयादि अनेक विदेशी एवं स्वदेशी विद्वान् हैं। कनिंघम महोदय का विचार है कि मानवजाति के इतिहास में लेखन का प्रथम प्रयास भावाभिव्यक्ति के लिए चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। उनकी दृष्टि में भारतीय ब्राह्मी का प्रारंभिक रूप भी चित्रात्मक रहा होगा जो पहले पदात्मक और फिर अक्षरों के रूप में विकसित हुआ होगा। उनका यह भी मानना था कि यद्यपि भारतीय अक्षर उद्भव में पूर्णतया भारतीय हैं तथापि भारतीयों ने अपनी इस व्यवस्था में मिस्र का अनुकरण किया है।[55] कनिंघम के साथ-साथ जॉन डाउसन, लेसन प्रभृति आचार्यों का कहना है कि आर्य पुरोहितों ने देशी भारतीय चित्रलिपि से ही ब्राह्मी का विकास किया है। यद्यपि उक्त आचार्यों का यह मत भ्रामक एवं अमान्य प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि प्राचीनतम भारतीय चित्रात्मक लिपि का इतिहास अब तक पूर्णरूपेण ज्ञात नहीं हो सका है। सिन्धु घाटी से भी प्राप्त अक्षरों का आधार न तो चित्रकारी लिपि मानी जा सकती है और न ही गूढ़ाक्षर लिपि। साथ ही सिन्धु लिपि का पाठन अब भी संदिग्ध ही है। फिर भी उपलब्ध सामग्री को देखते हुए ही डॉ. मार्शल का विचार था कि ब्राह्मी लिपि के विकास का आधार सिन्धु घाटी के अक्षर थे।[56] लैगडम महोदय का भी मानना था कि ब्राह्मी का उद्भव हड़प्पाई लिपि से ही हुआ।[57] हण्टर महोदय ने भी इस मत का समर्थन किया है।[58] किन्तु आर्य भारतीय हैं - इस मत के साथ-साथ हड़प्पा सभ्यता एवं वैदिक सभ्यता के बीच कालक्रम की समस्या अभी भी बनी हुई है। अतः विकास की क्रमिकता की गति स्थापित करने के लिए इस समस्या का स्थायी निराकरण आवश्यक है।

जॉन डाउसन[59] का मानना है कि भारतीय लिपि की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जो विश्व की अन्य किसी दूसरी लिपि से मेल नहीं खाती है। उनका विचार है कि इसका विकास गंगा के किनारे कहीं हुआ होगा जहाँ से यह विश्व के विभिन्न भागों में धीरे-धीरे फैलती गई। उनका यह भी मत है कि सेमेटिक जाति के लोग जहाँ

---

55 भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ. 20.
56 *वही*, पृ. 21.
57 *वही*
58 *वही*
59 *वही*

©Indira Gandhi National Open University

अपनी लिपि को दायीं से बायीं ओर लिखते थे, वहीं भारतीय बायीं से दायीं ओर लिपि का व्यवहार करते थे। उन्होंने भारतीय लिपि को हिन्दुओं की खोज माना है।

डॉ. आर. शामशास्त्री[60] ने ब्राह्मी लिपि के विषय में भारतीय उद्भव के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। **'देवनागरी लिपि की उत्पत्ति के विषय का सिद्धान्त'** नामक एक विस्तृत लेख में उन्होंने ब्राह्मी अक्षरों के विभिन्न चिह्नों को देवों तथा देवनगर के चिह्नों से सम्बद्ध किया है तथा तांत्रिक-ग्रन्थों को अपनी गवेषणा का आधार बनाया है। उनका कहना है कि देवताओं की मूर्त्तियाँ बनने के पूर्व उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों के द्वारा होती थी, जो कई त्रिकोण तथा चक्रों आदि से बने हुए यंत्रों, जिसे देवनगर कहा जाता था, के मध्य लिखे जाते थे। देवनगर के मध्य लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालान्तर में उन-उन नामों के पहले अक्षर माने जाने लगे और देवनगर के मध्य उनका स्थान होने से उनका नाम देवनागरी हुआ। किन्तु जिन तान्त्रिक-ग्रन्थों का यहाँ आश्रय लिया गया उसे तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता है जबतक यह सिद्ध न हो जाता है कि वे तान्त्रिक-ग्रंथ वैदिक साहित्य के काल से पूर्व के हैं अथवा कम से कम मौर्यकाल से पूर्व के हैं। अब तक का इतिहास तो यही बतलाता है कि तन्त्रग्रन्थ की रचना अत्यन्त परवर्तीकालीन रही है। अतः डॉ. शामशास्त्री का मत अस्पष्ट ही प्रतीत होता है।

बाबू जगन्मोहन वर्मा[61] ने अपने एक लेख के माध्यम से यह बताने का यत्न किया था कि वैदिक चित्रलिपि या उससे निकली हुई सांकेतिक लिपि से ब्राह्मी लिपि का विकास हुआ था। परन्तु उस लेख में कल्पित वैदिक चित्रलिपि के अनेक मनमाने चित्र का अनुमान कर उनसे भिन्न अक्षरों के विकास की जो कल्पना की गई थी उसमें एक भी अक्षर की उत्पत्ति के लिए कोई भी प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं दिया जा सका। प्रमाणरहित होने से उनका मत स्वीकार्य नहीं हो सकता। साथ ही बाबू जगन्मोहन वर्मा का यह मत कि ट, ठ, ड, ढ और ण - ये पाँच मूर्धन्य वर्ण आर्यों के नहीं थे तथा आर्यों ने वैदिक काल के आरम्भ में इन्हें अनार्यों से ग्रहणकर अपनी भाषा का अंग बनाया - भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल, डॉ. ओझा, डॉ. राजबली पाण्डेयादि आचार्यों ने भाषाविज्ञान के विवेचन के आधार पर ध्वनिशास्त्र की सहायता से यह मत व्यक्त किया है कि अक्षरों का विकास ऋग्वैदिक काल में ही हो चुका था। इस आधार पर उक्ताचार्यों ने ब्राह्मी लिपि के अक्षरों के निर्माण में किसी भी विदेशी प्रभाव को अस्वीकार कर दिया है तथा ब्राह्मी लिपि के विकास को निर्विवाद रूप से वैदिक काल के साथ संयोजित किया है।

ब्राह्मी लिपि के स्वदेशी उत्पत्ति सिद्धान्त के प्रखर आलोचक डॉ. डेविड डिरिंजर[62] ने स्वदेशी मूल के समर्थकों को निम्नलिखित तथ्यों के विषय में सावधान किया है, वे हैं -

(i) किसी देश में दो आक्रामक लिपियों का अस्तित्व यह सिद्ध नहीं करता है कि दूसरी पहले पर आधारित थी।

(ii) यदि सिन्धुघाटी के चिह्नों तथा ब्राह्मी वर्णों में आकार-साम्य सिद्ध हो भी जाता है तो भी सिन्धु घाटी की लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति तब तक स्वीकार नहीं की जा सकती है जब तक यह सिद्ध न हो जाता है कि दोनों लिपियों के समान चिह्नों द्वारा व्यक्त ध्वनि भी समान है।

(iii) सिन्धुघाटी की लिपि संभवतः सांक्रांतिक पद्धति या मिश्रित अक्षरवाली भावपरक लिपि थी जबकि ब्राह्मी अर्धाक्षरी थी। अतः सिन्धुघाटी की भावपरक लिपि ब्राह्मी की अर्धवर्णात्मक लिखावट को कैसे विकसित कर सकती है।

---

60 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 78.

61 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 78-79.

62 भारतीय पुरालिपि, पृ. 34.

©Indira Gandhi National Open University

(iv) बृहत् वैदिक वाङ्मय में प्राचीन आर्यावर्त में लिखावट के अस्तित्व का न तो कोई निर्देश है और न तो प्रसंग। यहाँ ज्ञान, विद्या एवं वाक् की देवी सरस्वती की चर्चा तो है किन्तु लिपि से संबंधित किसी देवता का नहीं।

(v) केवल बौद्ध साहित्य में लिखावट के निर्देश प्राप्त होते हैं।

(vi) केवल अभिलेखों के आधार पर यह माना जाता है कि छठी शताब्दी ई.पू. में ब्राह्मी लिपि विद्यमान थी।

(vii) आचार्यों के अनुसार 800-600 ई. पूर्व का काल भारत में व्यापारिक जीवन में विशिष्ट उन्नति का काल था। इसी काल में भारत के दक्षिण-पश्चिम तट से बेबीलोन के साथ नौ-व्यापार का विकास हुआ था। कहा जाता है कि व्यापारिक विकास ने लेखन के ज्ञान के प्रसार में सहायता प्रदान की थी।

(viii) भारत के प्राचीन आर्य-इतिहास के विषय में अत्यल्प ज्ञान प्राप्त है।

(ix) ई. पूर्व छठी शताब्दी में उत्तरी भारत की एक विशेष धार्मिक क्रान्ति से अस्तित्व में आये जैन और बौद्ध धर्म ने लिपि के प्रसार में विशेष सहायता प्रदान की। जैन एवं बौद्ध धर्म में भी विशेषकर बौद्ध धर्म ने लिपि के ज्ञान के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

(x) संक्षेपतः, प्रमाण के विभिन्न सूत्र आर्य-भारत में लिपि के प्रवेश के लिए ई. पूर्व आठवीं और छठी शताब्दियों के बीच का काल सूचित करते हैं।

भारतीय आचार्यों ने उक्त आक्षेपों का सम्यक् परीक्षणकर समुचित निराकरण प्रस्तुत किये हैं, वे हैं -

1. इनमें प्रथम दो कथन नितान्त असंगत हैं। किसी देश में विद्यमान दो आक्रामक लिपियों में से पूर्ववर्ती लिपि से परवर्ती लिपि के निकलने की पुष्टि तब तक स्वीकार्य है जब तक उसके विरुद्ध कोई प्रमाण सामने न आ जाए।

2. तृतीय कथन के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि अब तक यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि सिन्धुघाटी की लिपि में ध्वनितत्त्व का अभाव है।

3. चतुर्थ धारणा पूर्णतः मिथ्या है। हिन्दू देवमण्डल में स्वयं सरस्वती तथा ब्रह्मा दोनों ही अपने एक हाथ में पुस्तक लिए हुए प्रदर्शित किये गये हैं। छठी शताब्दी ई. पूर्व के पहले की एक युगल मूर्त्ति में साथ खड़े एक पुरुष और स्त्री की मूर्त्ति में से स्त्रीमूर्त्ति के हाथ में मुड़ी हुई एक पुस्तक है जो छठी शताब्दी ई. पूर्व के पहले भारत में लेखन कला के अस्तित्व को प्रकट करता है।

4. पाँचवीं युक्ति के अन्यथात्व की सिद्धि के लिए बौद्ध साहित्य की पृष्ठभूमि का अनुशीलन तथा वेदांगों और वैदिक साहित्य का अध्ययन आवश्यक है।

5. छठी युक्ति केवल स्मारक-अवशेषों का निर्देश करती है जिससे नाशवान् सामग्री पर लेखन का खंडन नहीं हो जाता है।

6. भारत तथा पश्चिम के बीच व्यापारिक सम्बन्ध विषयक सातवीं युक्ति से भारत का ऋणी होना सिद्ध नहीं होता है, वस्तुस्थिति इसके विपरीत भी हो सकती है।

7. आठवीं युक्ति में यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है कि पश्चिमी एशिया की सभ्यता की अपेक्षा भारत की सभ्यता कम पुरानी है। श्रीतिलक एवं श्रीशंकर के वैदिक वाङ्मय के कालविषयक

©Indira Gandhi National Open University

सिद्धान्त पश्चिमी विद्वानों की दृष्टि में कोरी कल्पना है किन्तु बूलर और विण्टरनित्स जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारत में आर्य सभ्यता का प्रारंभ ई. पूर्व चतुर्थ सहस्राब्दी रखा है।

8. जहाँ तक नवम युक्ति का संबंध है तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि जैन और बौद्ध धर्मों ने प्राकृतों को तथा उसके साथ लेखन को लोकप्रिय बनाया, किन्तु दोनों ही धर्म वैदिक या लौकिक भाषा के लिए लेखन की पूर्वकल्पना करते हैं। वास्तव में बुद्ध ने अपने शिष्यों को छन्दों (वैदिक या लौकिक संस्कृत) में अपने संवाद को लिखने के लिए निषिद्ध किया था।

9. दशम युक्ति कल्पना पर आधारित होने से बुद्धिसंगत प्रतीत नहीं होता है। इस युक्ति से यह बात ध्वनित हो रही है कि लेखन का मूल आर्येतर है तथा आर्य भारत में बाहर से आये थे - उक्त कथन पूर्णतः निराधार है।

यहाँ डॉ. डिरिंजर द्वारा प्रस्तुत कोई भी युक्ति तथ्यपरक एवं युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती है जो भारत में पूर्व से ही विद्यमान लेखन पद्धति से ब्राह्मी के विकास को निषिद्ध करता हो।

ब्राह्मीविषयक स्वदेशी उत्पत्ति सिद्धान्त पर विचार करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ध्वनि, उच्चारण, आकृति, व्याकरणादि की दृष्टि से ब्राह्मी विश्व में उपलब्ध अन्य लिपियों के सर्वथा पृथक् है। इसकी अपनी विशिष्टता है जो पूर्णतः भारतीय है और जो इसे विश्व की अन्य लिपियों से पृथक् करती है। अन्ततः हम कह सकते हैं कि यह पूर्णतः भारतीय लिपि है जिसके उद्भव का मूल भारत है। इस दृष्टि से ब्राह्मी के उत्पत्तिविषयक स्वदेशी या भारतीय उद्भव का सिद्धान्त सर्वमान्य व सर्वस्वीकार्य है।

सन्दर्भग्रन्थ-सूची

1. अभिलेखमाला, झा, पं. रमाकान्त और झा, पं. हरिहर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सप्तम संस्करण, 2004.

2. अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, थापर, रोमिला, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1977.

3. अष्टाध्यायी, पाणिनि, सम्पादक - पाण्डेय, गोपालदत्त, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 1987.

4. आधुनिक भारत का इतिहास, ग्रोवर, वी.एल., एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981.

5. उत्कीर्णलेखास्तबक, कम्बोज, डॉ. जियालाल, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2015.

6. ऋग्वेद संहिता, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994.

7. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 1997.

8. प्राचीन भारत का इतिहास, महाजन, विद्याधर, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., रामनगर, नई दिल्ली।

9. भारत का इतिहास (1000 से 1707 तक), श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1992.

©Indira Gandhi National Open University

10. भारत के प्रसिद्ध अभिलेख, अवस्थी, आचार्य डॉ. श्रीपति, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007.

11. भारतीय पुरालिपि, पाण्डेय, डॉ. राजबली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण: 2012.

12. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, सहाय, डॉ. शिवस्वरूप, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संशोधित तृतीय संस्करण, 2000 ई.

13. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, ओझा, रायबहादुर हीराचन्द राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 1918.

14. भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, द्विवेदी, डॉ. कपिलदेव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, 1998.

कोशग्रंथ

1. संस्कृत-हिन्दी कोश, आप्टे, वामन शिवराम, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1966.

2. शब्दकल्पद्रुम (1-5 भाग), देव, राजा राधाकान्त, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, प्रथम पुनर्मुद्रित संस्करण, 1987.

3. वाचस्पत्यम् (1-6 भाग), भट्टाचार्य, श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, 1969; द्वितीय से षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण 1970.

आंग्ल-भाषा

1. संस्कृत-आंग्ल कोश, आप्टे, वामन शिवराम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1970.

©Indira Gandhi National Open University